काला ब्राह्मण

श्री शरण

नव साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली—१

१

केसरी द्रुतगति से चलता हुआ अचानक रुक गया। दिन ढल रहा था। भास्कर अपनी किरणो को बटोर कर अस्ताचल की ओर तीव्रगामी हो रहे थे। महामात्य शकटार ने केसरी को आगे बढ़ने का सकेत किया; परन्तु वह मूक पशु केवल हिनहिना कर ही रह गया। उन्होंने अपनी बुद्धि के चातुर्य से उसके इंगित को समझा और स्वयं उससे उतर कर पैदल ही उस ओर को चल दिए; जिधर एक काला विशालकाय मनुष्य कुशाओं के झुन्डों को उखेड-उखेड़ कर उनकी जडो को मट्ठे से पूरित कर रहा था। ऐसा करने का अभिप्राय: उन कुशाओ की जड़ो को चींटिओ को खिला कर उनके कुल को विनिष्ट करना था। उसकी आकृति संध्या के अन्धकार मे भयावह हो उठी थी। उसका काला और भद्दा मुख, मोटे-मोटे ओष्ठ, बड़ी-बड़ी क्रूर आँखें, ओष्ठो के बाहर निकले हुए न्यूनाधिक दन्त, गजाशुन्ड समान काली बलिष्ठ भुजाएँ...वे खड़े देखते रहे और वह क्रोधी मानव अपना कार्य करता रहा...।

कुछ क्षणों तक उसकी क्रिया का अवलोकन करने के उपरान्त महामात्य शकटार ने पूछा—

"भद्र पुरुष ! इस कोमल कुशा ने आपका क्या बिगाड़ा है, जो आप अपनी क्रोधाग्नि से इसको समूल नष्ट करने पर तुले हुए हैं ?

उसने काम में आक्षेप करने वाले को कठोर दृष्टि से देखा। लेकिन उस भद्र पुरुष की वेश भूषा और शिष्टाचार ने उस दृष्टि को

स्थिर नहीं रहने दिया । उसने अपनी वाणी में मधुरता का अवलम्बन लेते हुए कहा—"देव ! पैर मे इस कुशा के चुभ जाने मात्र से ही विवाह सम्बन्धी विचार उसी समय नष्ट हो गए थे । इसलिए मैं इसे समूल नष्ट करके ही सास लूगा ।"

महामात्य शकटार उसके उत्तर को सुन कर विचार मग्न हो गए और वह स्वयं भी अपनी क्रिया मे लीन हो गया ।

महामात्य ने अपने मन मे विचार किया कि ऐसा ही मानव राज-नैतिक उथल पुथलोमे बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकता है । वे स्वयं पाटलि पुत्र राज्य के महामात्य होते हुए भी नवनन्द वश नरेश धननन्द की क्रोधी और अविचल प्रवृति से आशकित रहा करते थे । इसलिए उन्होंने इस भद्र पुरुष से सम्बन्ध बढाने का विचार किया ।

"आपका परिचय—" अनायास ही महामात्य शकटार के मुख से निकला । इन शब्दो को सुन कर भद्र पुरुष ने अपना मुख मोड़ा और तनिक गम्भीर मुद्रा मे उत्तर दिया—"काला ब्राह्मण ।"

"इतना ही पर्याप्त नही भद्र पुरुष ! मैं तुम्हे अपना सखा बनाना चाहता हूँ—"आशातीत नेत्रो से उसकी ओर देखते हुए महामात्य शकटार ने कहा ।

खुरपा चलते-चलते रुक गया । विचार द्वन्द्व मय हो उठे । यह राजसी पोशाक वाला उसे सखा क्यो बनाना चाहता है ? इसमें कोई राजनीति...सहसा चेहरे पर भद्दी सी मुस्कराहट आई...विचारों का द्वन्द्व शिथिल पड़ गया...ओठो ने अपनी क्रिया की—जिह्वा का स्वर दन्तो की पक्ति को चीरता हुआ निकला—"आप अपना परिचय दें ।"

"मै नवनन्द वश राज्य का महामात्य शकटार हूं...इधर राज्य की गतिविधि का निरीक्षण करता हुआ निकल आया था

वह निर्धन ब्राह्मण कुछ क्षणों तक उस परिचय को सुन कर उस भद्र पुरुष की ओर अविचल दृष्टि से देखता रहा । आज विशाल राज्य का महामात्य उसके समक्ष खडा सखा बनाने का अनुनय कर

रहा है। वह सोच उठा; तभी बोला—"मेरा नाम विष्णुगुप्त चाणक्य है; लेकिन तक्षशिला के विश्वविद्यालय में मुझे गुरुदेव कौटिल्य के नाम से पुकारा करते थे ।"

"शिक्षा विधि पूर्ण हो चुकी है।"

"हाँ ! मै उस अवधि को पूर्ण करके ही इधर से जा रहा था।"

"भविष्य की रूप रेखा तो स्थिर की ही होगी।"

"रूपरेखा—"पाटलिपुत्र के नीरव कानन मे भयकर अट्टहास गूज उठा।"

"भविष्य बनाया नही जाता स्वयं बन जाता है देव—" उसने उत्तर दिया। आप पाटलिपुत्र के विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करें। वहाँ पर देश विदेश से बहुत से विद्यार्थी शिक्षण पा रहे है। उन्हें शास्त्रों के ज्ञान के साथ-साथ धनुष, खड्ग, भाला और पटा आदि की शिक्षा दी जाती है।"

भद्र पुरुष महामात्य के इस प्रस्ताव को अस्वीकृत न कर सका। वह उनके साथ-साथ ही राजधानी को लौट आया। महामात्य ने पाटलिपुत्र के महाविद्यालय मे चाणक्य को उनका कार्य सौप कर छोड़ दिया और अन्य शिक्षक वर्ग से उनका परिचय करा कर राज-प्रासाद की ओर लौटे।

जिस समय महामात्य शकटार भोजनादि से निवृत हो कर वेश-भूषा को परिवर्तित करके शयन कक्ष पर लेटे। उस समय रात्रि का प्रथम पहर बीत चुका था। उनकी पत्नी और बच्चे भवन के दूसरे कक्ष मे विश्राम के लिए जा चुके थे। आज अधिक लम्बी यात्रा करने के उपरान्त उनका शरीर कुछ क्लान्त सा हो गया था। वे निद्रा-लोक मे पहुंचने के लिए करवटें ही बदल रहे थे कि अचानक द्वारपाल ने आकर उनकी निद्रा भंग करदी।

"श्रीमन् ! आपको महाराज ने निजी कक्ष में स्मरण किया है।"

"अच्छा ! अभी उपस्थित होता हूँ।"

उत्तर पाकर द्वारपाल यथा योग्य नमस्कार करके प्रस्थान कर गया. । महामात्य शकटार अपनी राजसी पोशाक को पहन कर हाराज धननन्द के निजी कक्ष में पहुँचे । इनसे पूर्व ही कात्यायन और मौर्य-सेनापति विशालगुप्त खड़े हुए थे । महाराज क्रोधावेश में कक्ष के चक्कर काट रहे थे । इन्होंने राजसी अभिवादन करके आज्ञा माँगी ।

महाराज धननन्द ने क्रोध भरी दृष्टि से देखा ।

महामात्य का माथा ठनक गया । उन्हे अपना भविष्य अशुभ दिखाई देने लगा; लेकिन अब चिन्तन का समय निकल चुका था ।

"जानते हो ! तुम्हे इस समय क्यों बुलाया गया है .....

महाराज धननन्द क्रोध मे भभक उठे ।

" नही श्रीमन ।" शान्त मुद्रा मे महामात्य शकटार ने उत्तर दिया ।

"तो देख लो—" महाराज धननन्द ने एक कागज़ का बन्डल महामात्य की ओर फेंकते हुए कहा ।

उन्होंने बन्डल को खोला ।

उस मे यवन सम्राट् अलिकसुन्दर का पत्र था ।

उन्हो ने पढ़ा—

मित्रवर ! आपका निमन्त्रण स्वीकार है, हम यथा शीघ्र ही आप की सेवा में पहुँचने की सूचना देंगे ।

—अलिकसुन्दर

इतना बड़ा लांछन उनकी देशभक्ति पर । वे सहन न कर सके । उनकी नासिका क्रोध से फुँकार उठी, ओष्ठ फड़फड़ाने लगें, उनके काँपते हुए करों से पत्र छूट कर पृथ्वी को चूमने लगा ।

उन्होंने कुछ स्थिर होकर कहा—

"महाराज ! यह मेरा कृत्य नही है ।"

"कृत्य नहीं तो सबूत ।"

"प्रपंच का सबूत इतनी शीघ्र नही मिला करता महाराज ।

" तो फिर।"

" अवसर दीजिए ।"

" असम्भव ! इसकी खोज अब महर्षि कात्यायन करेंगे और इस पद को भी वे ही सम्भालेंगे, आपको तब तक बन्दीगृह का मेहमान बनना होगा।"

तभी आज्ञा मिली।

" सेनापति ! इन्हें हस्तगत कर लो !"

विशालगुप्त आगे बढ़े।

देशभक्त शकटकार के करों मे लोह श्रंखलाएँ चमक उठीं।

तभी प्रभात का तारा डूब गया।

२
***

"गुरुदेव !"

चाणक्य ने देखा—राजसेनापति विशालगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त उन्हें विनम्र स्वर से पुकार रहा है। वे निरुत्तर विमुग्ध दृष्टि से देखते हुए सोचते रहे उस सबल, सुगठित, गौरवर्णयुक्त और प्रतापी बालक के प्रति। वह इस १८ वर्ष की आयु में ही शस्त्र और शास्त्र दोनोंमें ही पूर्णतया दक्ष होगया था। उसकी विद्वता और लगन से सारा गुरुवर्ग प्रसन्न रहता था। इन्हीं सब गुणों पर राजपुत्री सुनन्दा भी मोहित थी। वह सौन्दर्य मे अद्वितीया थी। वे जानते थे इस बालक के नेत्र किस सौन्दर्य का रसास्वादन कर रहे थे ? यह अनुरक्ति बढ़ती ही गई; परन्तु वे सब कुछ जानते हुए भी अपरिचित ही बने रहे। वे तो पूर्णरूप से इस बालक के मनोविकारों का अध्ययन करना चाहते थे।

कुछ क्षण बीत गए और चन्द्रगुप्त को गुरु की ओर से उत्तर नहीं मिला तो उसने पुन. पुकारा—

"गुरुदेव !"

तभी वे चेतनावस्था मे होकर बोले—

"वत्स !"

"मै आपसे परामर्श लेने आया था गुरुदेव ।

"विचार विनिमय करो वत्स !"

गुरुदेव की आज्ञा पाकर चन्द्रगुप्त ने कहना आरम्भ किया।

"देवी सुनन्दा राज प्रासाद मे नित्य प्रातः घड़ी दो घडी अध्यापन के लिए कह रही हैं"

"मेरी ओर से अनुमति मिल सकती है चन्द्र ।"

"लेकिन गुरुदेव...।"

"लेकिन क्या ? स्पष्ट कहो ।"

"इससे गुरुदेव मेरे विद्या पठन में व्याघात पहुँचेगा, दूसरे कुछ गडबड़ ।"

"विद्या दान से विद्या बढ़ती ही है, घटती नही पगले ! वत्स दूसरी बात के लिए साम्राज्ञी की अनुमति ले लो ।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है गुरुदेव ।"

"कल्याण हो ।"

आशीर्वाद पाकर जैसे ही चन्द्रगुप्त महाविद्यालय से बाहर निकले वैसे ही सुनन्दा ने आकर पूछा–

क्या आज्ञा है ? "

"देवी ? वैसे तो मै तैयार हूँ ; लेकिन अध्यापन के लिए साम्राज्ञी की अनुमति मिलनी आवश्यक है ।"

"वह भी मिल जायेगी ।"

"अध्यापन के समय आपकी सखियों का होना भी आवश्यक है ।"

राजपुत्री को इस बात को सुन कर तनिक क्रोध तो आया; लेकिन विद्याध्ययन के बन्धन के लिए भी उद्यत हो गईं ।

चन्द्रगुप्त ने साम्राज्ञी की अनुमति से राजपुत्री के शिक्षण का बोझ अपने कन्धे पर ले लिया।

उनका कार्यक्रम नित्य प्रति चलने लगा। इससे राजपुत्री को विद्या का तो विशेष लाभ नही हुआ, लेकिन अपने स्नेह विन्दुओं को बरसाने का सुगम अवसर हाथ लगा। राजपुत्री ने अपने अनुराग के पूर्ण दर्शन कराने का प्रयत्न किया; परन्तु चन्द्रगुप्त स्वामी सेवक सम्बन्ध होने के कारण इससे दूर ही भागता रहा। उसने अपने आदर्शों द्वारा राजपुत्री को सुधारने का प्रयत्न किया; परन्तु सुनन्दा की अनुरक्ति रुकने के स्थान पर दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई।

और एक दिन...

सुनन्दा ने अवसर उचित समझ कर चन्द्रगुप्त से अपने अन्तर के भाव प्रगट कर ही डाले।

"मै आपके साथ विवाह करना चाहती हूँ।"

"विवाह!" चन्द्रगुप्त राजपुत्री की इस बात को सुनकर तनिक चौके और बोले—"देवी! एक साधारण सेनापति का पुत्र राजपुत्री के योग्य कैसे हो सकता है? यह बात मेरी समझ में नही आती है। फिर अभी आयु मे भी इस योग्य नहीं हूँ। आप के माता-पिता भी इस सम्बन्ध को पसन्द नही करेगे।"

"माता पिता की अनुमति तो मिल सकेगी, लेकिन उससे पूर्व आप की अनुमति की आवश्यकता थी।"

"लेकिन मुझे भय है कि देवी! आप इतने विशाल साम्राज्यपद से उतर कर एक साधारण सेनापति के घर में कैसे जीवन बिता सकेंगी?" चन्द्रगुत्त ने उत्तर दिया।

"शुद्ध लौकिक स्नेह के सन्मुख मैं साम्राज्य पद को तुच्छ समझती आई हूँ कुमार"—सुनन्दा ने निर्निमेष नेत्रो से चन्द्रगुप्त की ओर देखते हुए जवाब दिया।

"देवी ! ऐसा आप भावावेश मे कह रही है । यह स्नेह की ग्रन्थियाँ वर्ष दो वर्ष ही अच्छी लगती है । इसके उपरान्त दीर्घ जीवन रह जाता है, रोने मात्र के लिए । अतः मै नही चाहता कि मेरे कारण आपका आल्हाद पूर्ण जीवन कन्टकमय बने । वैसे आपकी उदार प्रीति पर मेरी श्रद्धाजलिया अर्पित है—" चन्द्रगुप्त ने कहा ।

"आपका कथन सत्य हो सकता है ; लेकिन उपर्युक्त बातो से तो मेरे पर मानसिक प्रहार हो रहा है ।"

मेरा ऐसा करने का अभिप्राय: नही था ।"

"तो आप फिर सत्य कहें कि क्यों पीछे हट रहे है •?"

"अपराध क्षम्य हो तो विचार प्रगट करूँ ।"

"अभय होकर कहिए—" सुनन्दा ने उत्सुक्ता से कहा

"देवी आप के प्रपितामह जी नापित थे—इस लिए आप के साथ विवाह सम्बन्ध हो जाने से सामाजिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और इस रूप मे भी साम्राज्य का अधिकारी न बन कर केवल सेनापति मात्र ही बना रहुँगा और मेरे परिजन मुझ से सम्बन्ध न रख सकेगे ।"

लेकिन यह सत्य होते हुए भी आक्षेप निर्मूल ही है; क्योकि राजा, शूर, कुलीन और सेनापति इन सब की गणना श्रेष्ठ क्षत्रियों में की जा सकती है । इसके लिए शुद्ध स्नेह को नही ठुकराना चाहिए । "

"मैं इस बात को वापिस लेता हूँ देवी ।"

तभी सुनन्दा ने हँस कर कहा "और कुछ"

"आप में अभिमान की पुट है, जो कि देवी चरित्र में क्षति पहुँचा सकती है ।"

"ऐसा दोष वैसे तो मेरे मे है नही ! यदि न्यूनाधिक होगा भी तो भविष्य मे तुरन्त ही त्याग दूँगी ।"

"इन सब के अतिरिक्त हमारी आर्थिक स्थितियों में भी आकाश

पाताल का अन्तर है देवी। मेरे साथ आपका जीवन विपममय बन जायेगा।"

"मै आपके साथ कटकमय पथ को भी प्रसन्नता के साथ पार कर सकती हूँ। इसके अलावा और कोई शका हो तो बताओ।"

"और कोई नही।"

"मैं आपकी शकाओ का यथोचित समाधान करने का प्रयत्न करूँगी। आशा है इस के उपरान्त आप अवश्य मेरी आकाक्षा को पूर्ण करेगे।"

सुनन्दा ने यह शब्द कहे ही थे कि सेविका ने नमस्कार करके कहा- "राजकुमारी जी! भोजन के लिए महाराज आपकी प्रतीक्षा कर रहे है।"

"आती हूँ।"

उत्तर पाकर सेविका चली गई।

तभी चन्द्रगुप्त ने भी जाने की अनुमति मागी।

सुनन्दा चन्द्रगुप्त को विदा करके भोजन गृह मे पहुँची।

३

***

"राजमाता सेवक उपस्थित है"—चन्द्रगुप्त ने साम्राज्ञी के कक्ष में प्रवेश करके अभिवादन करने के उपरान्त कहा।

साम्राज्ञी की तद्रा भंग हुई...उन्होंने अपने सन्मुख मौर्यवशी सुन्दर नवयुवक को खडे हुए देखा। उसका मन सोच उठा—क्या सखी का लगाया हुआ दोष सत्य हो सकता है? तभी हृदय ने उत्तर दिया—यह सम्भव हो सकता है, शायद मौर्य राजकुमार ने इसी प्रकार से इस विशाल राज्य को पाने की सोची हो। क्या मौर्य राजकुमार की आसक्ति इस राज्य के ही बल पर ही......तभी वह चीखी...।

"नहीं, नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता।"

"राजमाता ! आज आप कुछ परेशान सी दृष्टिगोचर हो रही है–"
चन्द्रगुप्त ने कहा ।

"हाँ वत्स ! आज कुछ शकाओ के कारण मेरा मन अस्वस्थ सा है । उन्ही के समाधान हेतु तुम्हे यहाँ बलाया है" साम्राज्ञी ने गहरी दृष्टि से चन्द्रगुप्त की ओर देखा ।

"आज्ञा कीजिए राजमाता ।"

"तुम्हारा राजपुत्री के प्रति किस प्रकार का स्नेह है ?"

चन्द्रगुप्त को इस प्रकार के प्रश्न की स्वप्न मे भी आशा न थी । साम्राज्ञी के मुख से ऐसा प्रश्न सुन कर वह कुछ देर के लिए स्तब्ध रह गया ।

तभी साम्राज्ञी ने पुन. कहा ।

"यह सच है कि तुम्हारा स्नेह कलुषित..."

साम्राज्ञी वाक्य भी पूरा न कर पाई थी कि चन्द्रगुप्त का चेहरा तमतमा उठा और बोला—

"राजमाता इतना भयकर आरोप राजपुत्री पर न लगाइए, वह मानवी नही अपितु देवी है ।"

"यदि वह देवी है तो तुम अपना सम्बन्ध बताते हुए क्यों झिझकते हो ?"

"यदि आप सम्बन्ध जानना ही चाहती है तो सुनिए, मेरा उनका सम्बन्ध स्वामी और सेवक का रहा है । इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार के विचार मेरे मस्तिष्क में ही नही उठे ?"

"विश्वास किया जाये इन शब्दो पर...।"

"अवश्यमेव राजमाता ।"

"क्या तुम उन सम्भाषणो को बतला सकते हो; जो कि राजपुत्री के साथ एकान्त मे हुए थे ?"

'आप यह सब कुछ राजपुत्री से ही पूछिए । मैं उनके सम्भाषणो को प्रगट करने की क्षमता नही रखता हू राजमाता ।"

"इससे स्पष्ट है कि तुम कुछ न बताओगे।"

"अन्य व्यक्ति का भेद खोलने में असमर्थ हूँ राजमाता।"

"अब तुम प्रस्थान कर सकते हो।"

"जो आज्ञा"—कहकर चन्द्रगुप्त राजसी अभिवादन करने के उपरात अपने गन्तव्य स्थान की ओर प्रस्थान कर गया।

साम्राज्ञी चिन्तित मुद्रा मे मौर्य राजकुमार को तब तक देखती रही जब तक कि वह उनकी आँखो से ओझल नही हो गया। इस विचित्र घटना ने उनके मन मे सघर्ष उत्पन्न कर डाला। सखी के ये शका के दो शब्द उनकी सुख शाँति को समाप्त कर बैठे। वे स्वर्ण सिहासन से उठ कर पलँग पर लेट गई। उनकी दृष्टि पलँग पर पड़े पड़े कक्ष की कडियो को गिनने लगी।

तभी किसी के कोमल करों का स्पर्श हुआ ? उन्होने देखा उनकी एकमात्र पुत्री सुनन्दा खडी मुस्करा रही थी।

"आओ बेटी !" साम्राज्ञी ने कुछ चिन्ताओं की रेखाओं को मिटाते हुएं कहा।

सुनन्दा अपनी माता के सम्मुख बैठ गई।

"बेटी चन्द्रगुप्त का अध्यापन कार्य कैसा चल रहा है ?"

"उनकी ओर से तो ठीक ही चल रहा है माता जी लेकिन...।"

सुनन्दा वाक्य को पूरा करती हुई कुछ झिझकी।

"लेकिन क्या बेटी ? साफ़२ कहो। मैं तुम्हारी माता हूँ। यदि तुम मुझ से ही छिपाओगी तो कहोगी किससे ?" साम्राज्ञी ने सुनन्दा के चेहरे का अध्ययन करते हुए पूछा।

"मैं उनसे विवाह..."

"यह क्या कह रही है तू ? एक सेनापति के लडके से नवनन्द वंश की राजकुमारी का विवाह। यह कदापि नहीं हो सकता बेटी—" साम्राज्ञी ने खिन्नता के साथ उत्तर दिया।

"माता ! मुझे आपकी ओर से ऐसे उत्तर की आशा स्वप्न में भी न थी। मुझे विश्वास था कि आप..."

"यही न कि मैं भारतीय सभ्यता के प्रतिकल चल कर तेरा साथ दूंगी।"

"आप साथ दें या न दें, लेकिन मैं अपने विचारो से अस्थिर नही हो सकती।"

"बेटी ! चन्द्रगुप्त किसी बात मे भी तुम्हारे योग्य नही ? तुम किसी अन्य राजकुमार को चुन लो। मैं उससे तुम्हारा विवाह सहर्ष करूगी।"

"विवाह गुड्डे गुड़ियों का खेल नहीं, बल्कि सारे जीवन का प्रश्न है माता जी। मै राज्य लाघव के कारण अपने विचार परिवर्तित नही कर सकती हूँ।"

"यदि चन्द्रगुप्त इस विवाह के लिए उद्यत न हो तब..."

"उसे मै स्वय तैयार कर लूँगी।"

"अच्छा बेटी ! यदि तेरी यही इच्छा है तो तेरे पिता मे इसकी स्वीकृति दिलाने का प्रयत्न करूँगी।"

"सच माता जी—" यह कह कर सुनन्दा राजमाता से लिपट गई।

साम्राज्ञी ने अपने हृदय की कसक को निकाल कर सुनन्दा को बक्षस्थल से लगा लिया।

४

बन्दीगृह का द्वार खुला ।

तभी रात्रि के दूसरे पहर का घन्टा बजा ।

शिला पर बैठे हुए शकटार ने देखा—

सेवक मशाल हाथ मे लिए हुए उन की ओर आ रहा था ।

मशाल की ज्योति में उन्होने देखा—

महाराज धननन्द उन के सम्मुख खड़े हुए है ।

महामात्य शकटार के पैरों ने साहस बटोरा, जिससे वे महाराज के अभिवादन के लिए खड़े हो गये ।

तभी महाराज ने कहा— "शकटार ! मै आज तुम्हें स्वयं स्वतन्त्र करने आया हूँ । तुम्हारे तीन पुत्र रोगग्रस्त होने के कारण इस नश्वर ससार से प्रस्थान कर गये हैं । हमें दुःख है कि तुम्हारी अनुपस्थिति में हम उन को नही बचा सके ।"

"महाराज ! इस बूढ़े का शेष जीवन भी यही बीत जाता तो अच्छा था । अब इस दीपक में इतना तेल शेष नही है; जो कि अधिक देर तक जल सके ।"

"शकटार ! अधिक लज्जित मत करो ! मैंने भावावेश में एक महान् गलती की थी । मैं अब उसका प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ ।"

"प्रायश्चित्त ! यह क्या कह रहें है महाराज ! यह तो हम जैसे तुच्छ मानवों का आभूषण है ।"

"तुम्हे कल से महामात्य कात्यायन के प्रधानात्व मे मंत्री पद को सम्भालना पडेगा।"

इतना कह कर वे शकटार को अपने साथ ही बन्दीगृह से निकाल लाए।

महाराज के अन्तिम आदेश को सुन कर शकटार का हृदय क्षोभ से भर उठा।

उनके ओष्ठ कुछ कहने के लिए उद्यत हुए—

परन्तु समय ठीक न समझ कर वे शान्त ही रहे।

रात्रि के प्रगाढ अन्धकार मे मशाल आगे की ओर बढ़ती गई और दो मानवी छाया उसका अनुसरण करती रही।

समय बीतता रहा।

कार्य चलता रहा।

लेकिन बूढा शकटार का हृदय अपने पुत्रों की मृत्यु का कारण महाराज को समझ बैठा।

वह अभी इस वेदना को भी न भुला पाया था कि अपमान की ज्वाला ने उसके जीर्ण शरीर को झुलसित करना आरम्भ कर दिया।

उसने महाराज से अपने अपमान का प्रतिशोध लेने की चेष्टा आरम्भ की।

इस शुभ कार्य के लिए उन्होने चाणक्य को ही श्रेष्ठ व्यक्ति समझा, क्योकि वे उसके उग्र स्वभाव से पूर्णतया परिचित थे।

एक दिन वह अवसर भी आ गया—

महाराज ने कृत्या यज्ञ के लिए किसी महर्षि को बुलाने के लिए शकटार को कहा। शकटार ने विष्णुगुप्त चाणक्य को यज्ञ स्थल पर प्रधान ऋत्विज के आसन पर सुशोभित करके स्वयं पाटलि-पुत्र से तक्ष-शिला को प्रस्थान कर दिया।

महाराज ने यज्ञ स्थल पर पहुँच कर देखा—

प्रधान ऋत्विज के स्थान पर कुरूप काला अनिमत्रित ब्राह्मण।

उनका शरीर क्रोध से काँपने लगा।

उन्होंने शकटार को पुकारा...

परन्तु उनकी आवाज़ का उत्तर न मिला।

शकटार की खोज में प्रासाद का चप्पा २ छान डाला गया; परन्तु वे न मिले।

"धोखा! भंयकर धोखा!" महाराज चिल्लाये—"इस ब्राह्मण की भारी शिखा पकड़ कर इसे यज्ञ स्थल से बाहर निकाल दो।"

सेवको ने आज्ञा का पालन किया।

ब्राह्मण की बँधी हुई शिखा खुल गई।

वह क्रोधान्ध होकर बोला—

"यह शिखा अब उसी समय बन्ध सकेगी, जबकि मैं नवनन्द वंश का नाश कर डालूँगा।

महाराज ने ब्राह्मण के इस अभिशाप को सुना और क्रोध पी कर ही रह गये।

५

★★★

"महाराज! शकटार को महामात्य के पद से हटा कर एक साधारण से मन्त्री का पद देकर अच्छा नही किया—" महर्षि कात्यायन ने महाराज से कहा।

"ऋषिवर! यह सब कुछ क्रोधावेश में ही हो गया था। काश मैं आप का कहना मान लेता; महाराज ने खिन्न स्वर में उत्तर दिया।

"आपको विष्णुगुप्त से द्वेष नहीं बाँधना था महाराज।"

"वह निर्धन ब्राह्मण इतने बड़े राजवंश का क्या बिगाड सकता है ऋषिवर?"

",ऐसा न सोचिए देव ! वह निर्धन ब्राह्मण एक छोटा सा अध्यापक ही नही, बल्कि चतुर, श्रमी, विवेकी, उत्साही और कार्यनिष्ठ मानव है । और फिर..."

"और फिर क्या ऋषिवर...?"

"उसके साथ शकटार की विलक्षण शक्ति है देव ! वे दोनो तक्षशिला मे जाकर इस राज्य को विनिष्ट करने की मत्रणा कर रहे होगे !"

"क्या आपको पूर्ण विश्वास है कि शकटार उन्ही के साथ गए होगे ?"

"मुझे तो पूर्ण विश्वास है देव । वैसे मैनें गुप्तचर भी भेजे हुए है । और भी कुछ सुना आपने—" कात्यायन ने कहा ।

"नहीं तो ।"

"अलिक सुन्दर भी आक्रमण का अवसर देख रहा है देव ।"

"तो क्या हमें इस विषय में चिन्तित रहना पड़ेगा ऋषिवर ?"

"चिन्तित तो नही देव; लेकिन सजग अवश्य रहना पड़ेगा ।"

"ऋषिवर !"

"हाँ देव !,,

"मै कुछ निजी परामर्श भी करना चाहता हूँ ।"

"आज्ञा कीजिए देव ।"

"राजपुत्री मौर्य पुत्र चन्द्रगुप्त से विवाह करना चाहती है ।"

"वैसे तो देव नवयुवक सर्वगुण सम्पन्न है लेकिन......"

"लेकिन क्या ऋषिवर ?"

"उसकी आर्थिक स्थिति कुछ विशेष अच्छी नही है देव ।"

"राजपुत्री उसपर अनुरक्त है ऋषिवर, लेकिन वह स्वय इससे पीछे हट रहा है ।"

"इसका कारण...।"

"वह तो पद की अयोग्यता बतलता है; लेकिन मेरे विचारो में

यह बात दिखाई नही देती । मैं समझता हूँ कि उसे अभिजात होने का गर्व है ।"

"यह उसकी भूल है देव !"

"जो कुछ भी समझो ऋषिवर !"

"क्या राजपुत्री अन्य किसी राजकुमार को चुनने के लिए उद्यत नही है देव ?"

नही ऋषिवर ! कल उसकी माता ने उसे बहुत कुछ समझाया; "लेकिन वह लडकी अपने विचारों पर अटल रही ।"

"इस बारे मे आपने कोई विशेष बात नही की देव ।"

"चेष्ठा तो की थी; परन्तु वह लज्जावश मुझ से कुछ कह न सकी । तब साम्राज्ञी ने ही सब कुछ बताया था ।"

"आपकी आज्ञा हो तो देव, मौर्य सेनापति से इस विषय मे बातचीत की जाए ।"

"मेरे विचार में तो यही ठीक है ऋषिवर...लेकिन.....

"लेकिन क्या देव ?"

"राजपुत्री ऐसा नही चाहती है ।"

"ऐसा क्यों ?"

"उसका विचार है कि वह स्वय ही कार्य को सुलझा सकेगी ।"

"ऐसा तो कठिन सा प्रतीत होता है देव ।"

" आप इस विषय में जो उचित समझे करें ऋषिवर ।"

"जो आज्ञा —" कह कर कात्यायन अपने हर्म्य को पधारे ।

६

★★★

"ऋषिवर ।"

"हा देव ! "

"क्या समाचार है ? "

"मौर्य सेनापति पच्चीस वर्ष की अवस्था से पूर्व चन्द्रगुप्त का विवाह करने में शास्त्रीय मर्यादा का उलंघन समझते हैं देव ? "

"इस से स्पष्ट है कि वे इस सम्बन्ध को नही करना चाहते—" कुछ क्रोधित मुद्रा में महाराज ने कहा ।

"वे पिप्पली कानन जाने की भी आज्ञा चाहते हे देव ।"

"ठीक है ऋषिवर ! वह हमारा मान भग करके यहा रहना नही चाहते । "

"यह बात नहीं है महाराज । वे स्वयं अपनी आर्थिक स्थिति से विशेष चिन्तित है । "

"मै ऐसा नही समझता ऋषिवर ।"

"तो साम्राज्य का अपमान समझना भी आपकी भूल होगी देव । "

"यह शब्द आप कह रहे है ऋषिवर ।"

"हाँ देव । "

"उस क्षुद्र नवयुवक के लिए सुनन्दा का दुखित होना मेरे लिए असह्य है ऋषिवर । मै उन दोनों का एक क्षण के लिए भी इस राज्य में रहना उचित नहीं समझता । "

"देव ! मै पिता के हृदय की पीड़ा को पूर्णतया समझता हूँ। लेकिन......"

" लेकिन क्या ऋषिवर ? "

" इस से राजपुत्री को कष्ट सम्भव हो सकता है देव ।"

" वह कैसे ? "

" यदि चन्द्रगुप्त ने पूर्ण रूप से राजपुत्री के स्नेह को ठुकरा दिया तो यही समस्या उस के कोमल शरीर को झुलसित कर डालेगी देव । "

" उस का स्नेह योग्य राजकुमार के मिलने से टूट भी सकता है ऋषिवर । "

"यह स्नेह का अंकुर है. देव डाली का फूल नही, जो चाहे कुचल डाले ।"

"मै राजपुत्री को भली भाति जानता हूँ ऋषिवर । वह इतनी अविवेकी नहीं कि माता पिता को अपमानित होते हुए भी अपने विचारों पर अटल रहे ।"

"प्रेम अन्धा होता है देव ! इसमै माता पिता की गणना तुच्छो मे होती है ।"

"मैं ऐसा नही समझता ऋषिवर ! लेकिन अब...

"वह क्या देव ?"

"उस क्षुद्र नवयुवक का गर्व अब मुझसे न देखा जाएगा ।"

"यदि आप धैर्य रखते तो ! यह कार्य सध सकता था । "

"इस विषय पर मुझे विवश न कीजिए ऋषिवर ।"

"मैं विवश तो करता नही देव ! हाँ अपनी बुद्धि के अनुसार मत्रणा अवश्य दे सकता हूँ । यदि नही मानते तो अपनी इच्छा-नुसार आदेश दे ।"

"मौर्य सेनापति और उसके पुत्र को पिप्पली कानन मे जाने की आज्ञा देदी जाए ।"

"जैसी इच्छा।" यह कह कर कात्यायन जी ने मौर्य सेनापति के हर्म्य में जाकर उनको जाने की अनुमति प्रदान करदी।

मौर्य राजकुमार सुनन्दा को विकलावस्था मे ही छोड कर अपने पिता के साथ पिप्पली कानन को चले गए ।

सुनन्दा ने राजाज्ञा के पीछे अपनी खुशियों को क्षार होते हुए देखा।

७

***

"नमस्कार गुरूदेव !"

"कौन ? चन्द्रगुप्त—" चाणक्य के मुख से कौतुहलवश निकला—"कब आए वत्स ?"

"आज ही आ रहा हूँ । अब आप ही के चरणो में रह कर विद्या का अध्ययन करने का विचार है ।"

"तुम्हें पाकर मै बहुत खुश हुआ हूँ चन्द्र।"

"यह तो आपकी महती कृपा है गुरूदेव।"

"जानते हो ये कौन है ?" चाणाक्य ने शकटार की ओर संकेत करके पूछा।

"पाटलि-पुत्र के महामात्य शकटार ।"

"तुम इन्हे अच्छी प्रकार से जानते हो।"

"हाँ गुरुदेव ! ये भी मेरे बडे कृपापात्र रहे हैं।"

"मौर्य पुत्र ! हम तुमसे पाटलिपुत्र के बारे मे कुछ पूछना चाहते हैं, आशा है कि निःसंकोच उत्तर दोगे—"शकटार ने पूछा।

"मै तो आपको पितृव्य के समान समझता आया हूँ, फिर संकोच किस बात का महाराज ?"

"तुम्हारे धननन्द के विषय में क्या विचार हैं ?"

वैसे तो आप विद्वानों के सन्मुख मेरे विचार तुच्छ ही हैं, लेकिन फिर भी प्रगट करुँगा । वह धनलोभी और अभिमानी है । उसने मेरे सम्बन्ध के अस्वीकार कर देने मात्र से मेरे पिता को पदच्युत कर दिया है । अब शायद पिप्पली कानन राज्य के सम्बन्ध मे भी वह कुछ बखेड़ा उठाएगा ।"

"यह तो राजनीति की बातें है वत्स, साधारण व्यवहार के बारे अपने विचार प्रगट करो ।"

"मै न उनसे सन्तुष्ट हूँ और न असन्तुष्ट ही ।"

"अच्छा तो सप्तसिन्धु के विषय मे तुम्हारे क्या विचार हैं ?"

"मै इस विषय मे पूर्णतया अनभिज्ञ हूँ । आप ही इस प्रान्त के बारे में कुछ बतलाइएगा ।"

"अच्छा तो सुनो ! मै अपनी न्यूनाधिक अन्वेषण के आधार पर बता रहा हूँ । महामात्य शकटार ने कहा—"यवन राष्ट्र का सम्राट अलिक सुन्दर (सिकन्दर) मक्दूनियाँ से विश्व पर विजय प्राप्त करने के लिए निकला है । वह मिश्र को पराजित करके ईरान के सम्राट दारा पर आक्रमण करने का प्रयत्न कर रहा है । यदि वह इस आक्र-मण में सफल हो गया तो भारत उससे अपनी रक्षा न कर सकेगा ।"

"सप्त-सिन्धु के प्रधान नरेशों मे किन-किन की गणना की जाती है देव—"चन्द्रगुप्त ने पूछा ।

"इन नरेशों मे तक्षशिला नरेश, झेलम नरेश, मसागा नरेश, पंचनद का मालवीय प्रजातन्त्र राज्य, सिन्धु नरेश, चाकल, केवट और हस्ती आदि पारस्परिक द्वेष भावना को भूल कर और सँगठित होकर संघर्ष करें जो अलिक सुन्दर भी पराजित हो सकता है और पाटलि-पुत्र का विशाल राज्य भी हस्तगत किया जा सकता है—" महामात्य शकटार ने उत्तर दिया ।

"लेकिन इनका पारस्परिक सहयोग प्राप्त करना कठिन है देव ।"

"यह तो मै भी समझ रहा हूँ चन्द्र; लेकिन प्रयत्न तो करना ही पड़ेगा।"

"आप और गुरुदेव की शक्ति ही पाटलिपुत्र के लिए पर्याप्त है देव।"

"तुम्हारा उत्साह देख कर मै बहुत खुश हूँ वत्स।"

चाणक्य ने कहा—" लेकिन तुम्हें एक कार्य करना होगा।"

"कौनसा कार्य गुरुदेव ?"

"वह कार्य तुम्हारे लिए कुछ जटिल सा प्रतीत होता है।"

"आपकी आज्ञा के आगे सारी जटिलताएँ दूर हो जाती है गुरुदेव।"

"झेलम की राजकुमारी सुन्दर और विद्याव्यसनी है, उससे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना होगा—"चाणक्य ने इतना कह कर चन्द्रगुप्त के मुख की ओर देखा।

"जो आज्ञा गुरुदेव।"

"इस कार्य मे किसी प्रकार भद्दापन न आए।"

"तथास्तु।"

"वृषल इसी का नाम राजनीति है ! मैं तेरा वैवाहिक सम्बन्ध इस विशाल साम्राज्य की राजकुमारी के साथ चाहता हूँ।

"क्या ऐसे विवाह स्नेह से दूर होते हैं गुरुदेव ?"

"स्नेह होता तो अवश्य है वत्स, लेकिन तुम्हारा प्रथम स्नेह साम्राज्य से होगा।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है गुरुदेव।"

"तुम्हारे से ऐसी ही आशा थी वत्स...मेरा आर्शीवाद में कितू वीरो मैं वृषभ के समान ही शक्तिशाली होगा। अतः मै तुझे वृषल के नाम से पुकारता हूँ—"चाणक्य ने कहा।

"आपका कथन दृढता पूर्वक पूर्ण होगा गुरुदेव...।"

"मै चाहता हूँ।"

"क्या चाहते हैं गुरुदेव ।"

"तुम्ही मेरे हृदय मे ज्वलित अग्नि को पराक्रम और कुशाग्र बुद्धि से शांत करो । कुछ दिनो से मै तीव्र वेदना से पीड़ित हूँ वत्स, इसी धननन्द के पिता ने अपनी खड्ग से मेरे पिता चणक का सिर धड से अलग करके चौराहे पर बाँस के ऊपर लटका दिया था। उस समय सारी प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी थी । पर उस नराधम के हृदय मे तनिक भी दया न आई थी । ये भूतपूर्व महामात्य शकटार अपने परिवार सहित उसके बन्दी थे और वह नराधम राक्षस के हाथो की कठपुतली बना हुआ था...अब मै इस भेद को तुम दोनो के समक्ष खोल रहा हूँ ।"

"क्या आप चणक के पुत्र..." वृद्ध शकटार ने आश्चर्य से पूछा ।

"हाँ भूतपूर्व महामात्य शकटार ।"

तुम्हारा वह कोमल और पुष्प समान सुन्दर रूप कहा गया ?"

उसको मैने उस नराधम से बचने के लिए अग्नि देवता को अर्पण कर दिया। उस दिन से वंश को विध्वस की अग्नि को हृदय मे छुपाए हुए इधर उधर भटकता फिरा ।"

"तुम्हारी आकाक्षा अवश्य पूर्ण होगी ब्राह्मण ।"

चाणक्य ने उन शब्दो को सुना और उन्मीलन नेत्रो से आकाश की ओर देखने लगे ।

८

तक्षशिला के सुन्दर पत्तन मे एक दीर्घाकार जलाशय था, जिसमें संध्या और प्रातः समय रेशमी वस्त्रो से सुसज्जित नर नारी पण्य वीथी पर पग धरती हुई जलाशय पर भ्रमण और स्नानदि के लिए जाया करते थे। वहा पर नौकाएं प्रचुर मात्रा मे थी । रंग बिरंगे पुष्प, नील—कमल अपनी शोभा से इनकी शोभा को द्विगुणित कर रहे थे। वहा का सुखद जलवायु अनेक रोगो का शमण किया करता था । वह स्थान मृगयार्थ के लिए भी प्रसिद्ध था। इसके समीप ही एक सुन्दर ताल था। उसकी चारों ओर जाली की दीवारे थी। उसमे अनेक जातियो के ५००-६०० के लगभग पक्षी वास करते थे।

सध्या का समय था...

समीर ठन्डी और हृदय लुभाविनी चल रही थी ।

चन्द्र-गुप्त भी अपने प्रिय सखा के साथ भ्रमणार्थ हेतु उस सुन्दर जलाशय पर पहुँचे।

सहसा उन्होंने देखा...

एक रथ उनके पास ही आकर रुका ।

उसमे से दो सुन्दरियाँ उतरी जो कि पुष्पाभूषणों से अपने को सजाये हुए थी ।

उनके पीछे ही अगरक्षक थे ।

सहसा चन्द्र गुप्त के मुख से निकला ।

"राजकुमारी सुर्धरा...
उनकी आवाज फुस फुसा कर ही रह गई ।
उनके सुन्दर नेत्र राजकुमारी के सौन्दर्य का रस्वादन करते रहे ।
उसका सौन्दर्य क्या था ?
मानो विधाता के कौशल का प्रमाण था—
उसका अग प्रत्यग सौन्दर्य की प्रति मूर्ति था ।
उसका उन्नत ललाट, गोल मुख, और खंजन सी आखे उसके गौर वर्ण शरीर की शोभा बढ़ा रही थी ।
उसकी इठलाती हुई चाल गज-गामिनी को लजा रही थी ।
उसकी उन्नत उरोज और मणि मुक्ताओ से गुथी हुई वेणी नेत्रों की ज्योति को अपनी और खीच रही थी ।
चन्द्र-गुप्त ने यह सब कुछ देखा—
लेकिल दुर्धरा अपने सहपाठी मौर्य कुमार को न देख सकी ।
वह छोटी सी नौका मे सखी के साथ बैठ कर ताल की शोभा का रसास्वादन करने के लिये बढ गई ।
उसने गुरु देव की आज्ञा को अत्यन्त सुखद प्रद समझा ।
वह पेडो के झुरमुट मे खड़ा हुआ जब तक निहारता रहा तब तक उनकी नौका आखों से ओझल नही हो गई ।
उसके मुख से एक ठंडी सास निकली ।
तभी उसने कहा—"मित्र ! निम्न दुकूल के नीचे लंगोट तो पहने हुए हो न ।"
"हां ।"
"अच्छा तो चलो नौका विहार किया जाये ।"
दोनो मित्रो ने नाविक को बुला कर एक नौका ली और उस छोटी नौका से कुछ दूरी पर नौका विहार करने लगे...
सूर्य की अन्तिम किरणें ताल की लहरों से बिदा ले इही थीं ।
छोटो नौका तीव्र गति से बनज-बन की ओर जा रहीं थो ।

यहा पर जल कुछ गहरा था...बड़े २ नील-कमल अपने सोंदर्य से बनज बन की शोभा को बढा रहे थे ।

तभी राज कुमारी के मुख से निकला—

"देखो ! कितना सुन्दर नील-कमल है ?"

इतना कहते ही वे दोनो उसे तोडने के लिए झुक गईं ।

उनके एक ओर के भार से छोटी सी नौका डगमगा उठी—

और छपाके के साथ वे दोनो सुन्दरियो अथाह जल मे डुबकियां लगाने लगी ।

"बचाओ ! बचाओ !"

यह तीव्र ध्वनि चन्द्र-गुप्त के कानो मे पड़ी ।

वह उत्साही नवयुवक चिन्तित हो उठा ।

मल्लाह ने ध्वनि की ओर नौका को तीव्र गति से बढा दिया ।

दोनो नवयुवक अपने दुकूलो को निकाल कर जल की अथाह धारा मे कूद पडे ।

मौर्य कुमार ने राजकुमारी की ओर ध्यान दिया और उनका सखा राजकुमारी की सखी की ओर बढा ।

चन्द्र-गुप्त ने दुर्धरा का हाथ पकडा ।

उसकी पतली कटि मौर्य कुमार से चिमट गई...उसके पैर डगमगाने लगे ।

जल की अथाह धाराओं ने दोनो को अपनी गोदी में बैठाने की चेष्टा की; लेकिन कुमार ने साहस न छोडा...वह तैरने मे चतुर था । उसने एक हाथ से राजकुमारी के मुख को बन्द किया और दूसरे से उनकी कटि को पकड़े हुए पैरो से जल के वेग को चीरता हुआ नौका की ओर बढ़ा । नौका पर सखी को पहले ही पहुचा दिया गया था । राजकुमारी को भी मल्लाह की सहायता से नौका पर चढ़ाया । फिर उल्टी क्रिया द्वारा राजकुमारी का पानी निकाला...और विद्यापीठ के औषधालश मे उन्हे ले गये । वैद्य जी के एक सप्ताह के कठिन परिश्रम

और कुमार की सेवा से राजकुमारी यथा पूर्ण स्वस्थ हो गई। राजपुत्र दुर्घर्ष भी भगिनी की ऐसी अवस्था को सुनकर औषधालय पहुंच गये थे।

"कुमार! तुमने मुझे जीवन दान दिया है...मै इसके बिना जीवित नही रह सकता था।" दुर्धर्ष ने कहा—

"राजकुमार! मानव मे इतनी शक्ति कहा है जो वह किसी को जीवन दान दे सके? वह तो केवल जन सेवा कर सकता है, सो वही मैने किया है।"

"आपके इस आभार का ऋण इस जीवन मे चुका भी सकूगी या नही..."दुर्धरा ने चन्द्रगुप्त को निनिमेष नेत्रो से देखते हुए कहा।

"ऋण की कौन सी बात है राजकुमारी? मैने तुम्हे बचा कर तो अपना कर्त्तव्य पूर्ण किया है?"

"तो मै आज से समझू कि मेरे दो भाई है।"

"लेकिन मै आपको भगिनी समझने का साहस नही कर सकता; क्योंकि मै राजसेवक ठहरा और तुम राज्य स्वामिनी।"

"बहुत खूब! यह स्वामित्व का ढोंग खूब निकाला—" दुर्धर्ष ने हँसते हुए कहा।

"अच्छा तो कुमार! आप हमारे राज्य में अपने अमूल्य कुछ क्षण दे सकें तो अत्यन्त कृपा हो।"

"लेकिन समयाभाव के कारण..."

"अस्वीकार मत कीजिए कुमार। मै चाहती हूँ कि हमारे आपके राज्यों मे सदैव मैत्री जगी रहे।"

"हा कुमार! दुर्धरा का कथन सत्य है..." दुर्घर्ष ने कहा।

"आप दोनों की कृपा शिरोधार्य है...लेकिन..."

"लेकिन क्या कुमार?"

"गुरुदेब की आज्ञानुसार है कि यहाँ का पठन शीघ्र हीसमाप्त करके मैं यवन प्रदेश मे जाकर उनकी रण चातुर्य, अयच परिचालन

और सैनिक प्रबन्ध का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करूं। इसके उपरान्त राप्त-सिन्धु के राज्यो मे सगठन का अकुर उगाना पडेगा—" चन्द्रगुप्त ने दुर्धरा के मुख लावण्य की ओर निहारते हुए कहा।

"यह कार्य भी बडा महत्वपूर्ण है कुमार ।"

"नि.सन्देह ! क्या मै यह पूछने की धृष्टता कर सकता हूं कि पौरव नरेश ने अपनी तक्षशिला के प्रबन्धक सस्था को इतना बड़ा प्रात क्यो दे दिया कि वह समय उचित पाकर उनसे ही विमुख होने का प्रयत्न कर रहा है ?"

"इस प्रश्न का उत्तर अवश्य मिलेगा कुमार ! इस प्रबन्धक पर हमारे पितामह की अगाध श्रद्धा थी । उन्होने ऐसा स्नेह वश किया था ।"

"क्या आप यवन देश मे निर्भय होकर अध्ययन कर सकेगे ।"

"क्यो नही ? वहाँ पर मै एक विद्यार्थी के रूप मे जा रहा हूँ न कि एक राजनीतिज्ञ के रूप मे ।"

"क्या आप देश प्रेम को छिपा सकेगे ।"

"उद्देश्य की पूर्ति के हेतु सब कुछ करना पड़ता है राजकुमारी ।"

"कुमार ! अलिक सुन्दर के नेत्र अब इस ओर ही लगे हुए हैं... क्या हम अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रख सकेगे ?"

"एसी अवस्था मे तो भय है । हा, यदि यहा के नरेश एकत्रित हो गए तो उसे पराजित होकर जाना पड़ेगा ।"

"लेकित एकत्रित होना कठिन सा प्रतीत होता है"—दुर्धरा ने कहा ।

"किन्तु प्रयत्न अवश्य करना चाहिए ।"

"छोड़ो भी इस राजनीति को । क्या चौगान का मैदान आज शून्य ही रहेगा..." दुर्धरा ने कहा ।

"शून्य क्यो रहेगा भैया ?"

इतना कह कर राजकुमारी उन दोनों के साथ चौगान देखने के लिए चल दी ।

६

***

"कौन ? राजकुमारी सुनन्दा ! योगिनी के वेष मे—" चाणक्य के मुख से अचानक ही उपर्युक्त शब्द निकले।

"हां गुरुदेव।"

"राजकुमारी ! यह तूने इतनी अल्पायु में क्या कर डाला ?"

"इसी से मेरे मन को कुछ शाति मिल सकी थी गुरुदेव।"

"यह शान्ति तो बडी महगी पडी है बेटी। इसने रूप, गुण और विद्या इन तीनों के ही रूप को बदल डाला।"

"गत सप्ताह से ये बूढी आँखें तुम्हे तक्षशिला की पण्य वीथि पर किसी को खोजते हुए देखती रही...किन्तु तुम्हारी स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा न पडे...इसी हेतु तुम से मिलने का प्रयत्न नही किया गया राजकुमारी—भूतपूर्व महामात्य शकटार ने कहा।"

सुनन्दा ने आतुर नेत्रों से बूढे शकटार की ओर देखा...उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि ये आंखे तनिक सा अपनत्व पाकर ही बरस पड़ेगी। इस से उसकी योगसिद्धि...इस से अधिक वह न सोच सकी। उसने अपने विचारों को स्थिर करके कहा—"मैं इन प्रश्नों के स्थान पर अब आप दोनों से आर्शीवाद लेना चाहती हूं, जिससे मैं अपने कार्यो में सफल हो सकूं।"

"बेटी ! मैं तेरे पिता का घोर शत्रु होते हुए भी तेरा हितैषी ही हूँ। मेरी इच्छा है कि तू अपने हठ का त्याग करके सुख पूर्वक गृहस्थ

का आनन्द पाए। तू सरस्वती के समान पूज्या है...यदि तू अब भी घर जाना चाहती है तो तुझे पहुचाया जा सकता है। इसके साथ ही मै यह भी जुम्मेवारी लेता हूँ कि वृषल का स्नेह तुम सद्भावना के साथ पा सकोगी।"

"गुरुदेव! अब मै आपकी बेटी ही नही अपितु जगतमाता बन चुकी हूँ, जो कुछ एक बार ग्रहण किया जा चुका है वह अब त्याज्य नही है। मै अपनी लौकिक आह्लाद के पीछे अब विश्व हित के साधनो को नही मिटा सकती। मै जिस मोह ममता की श्रृंखलाओ को तोड़ कर इस विस्तृत क्षेत्र में आई हूं अब उसमें पुन: स्वयं को जकड़ना नहीं चाहती हूँ। इस वेश भूषा से पूर्व पहले मेरा एक ही कार्य था; लेकिन अब अनेक गुरुत्तर कार्य मेरे सन्मुख पडे हुए है...क्षमा करें गुरुदेव! यह योगिनी आपके कथन को नहीं मान रही है।"

"धन्य हो! देवी तुम्हारे इन उज्जवल विचारो का मैं स्वागत करता हूँ, लेकिन अब हम आशीवाँद देने के अधिकारी नहीं रहे है, क्योंकि जगत माता आशीर्वाद लेती नही वरन् दिया करती हैं।"

"वृषल के प्रति अब तुम्हारे क्या विचार है देवी—" शकटार पूछ उठे।

"वृषल का मैं सदैव हित चाहती हूँ। मैंने सुना था कि वे दुर्धरा राजकुमारी की विद्वता और उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उससे विवाह करना चाहते है, लेकिन संकोच वश वे अपने विचारों को बिना प्रगट किए ही प्रदेश को प्रस्थान कर गए।"

"यह तो सत्य है। क्या तुम्हारी राजकुमारी से भेंट हुई थी?"

"हाँ! मै उसके विचारों से अवगत होने के लिए ही उसके पास गई थी।"

"क्या वह विवाह के लिए उद्यत है?"

"पहले तो वे नहीं थी...लेकिन मेरे यह कहने पर कि वे तुम्हें

भगिनी बनाने के लिए इसलिए उद्यत नही हुए थे कि वे तुमसे शुद्ध वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे ।"

"उन्होने क्या उत्तर दिया ।"

"उन्होंने मुझसे स्पष्ट क्यो नहीं कहा ? राजकुमारी ने विह्वल होकर कहा था ।"

"तब मैंने समझाया कि उन्होने स्वाभिमानी होने के कारण ऐसा नही किया था ।"

"तभी मैंने पूछा—क्या इस विषय मे तुम्हारे भाई से विचार विनिमय किया जाए ?"

"इस पर वे क्या बोलीं ?"

"उनका उत्तर था—माता आप जैसा उचित समझें वैसा करे ।"

"अब आपका क्या विचार है ?"

"मैं दुर्धर्ष से यथा शीघ्र मिलना चाहती हूँ ।"

"इसके लिए हमारी सहायता ।"

"बस केवल इतना ही निवेदन है कि मेरा भेद गोपनीय रहे ।"

"तथास्तु ।"

तभी राजकुमारी सुनन्दा योगिनी के वेश में अंतरंग सखी के साथ चाणक्य के आश्रम से निकली ।"

१०

★★★

"द्वारपाल..." दुर्धर्ष ने कुछ विकल ध्वनि से पुकारा ।

"आज्ञा कीजिए श्रीमन्—" द्वारपाल ने यथोचित अभिवादन के उपरान्त पूछा ।

"कोई नवीन समाचार तो नहीं आया ।"

"नही श्रीमन् ।"

"पूज्यनीय शकटार भी अभी नहीं लौटे" ।

"नही श्रीमन् ! लेकिन दो स्त्रियां योगिनी वेश मे आपसे भेंट करने के लिए बैठी हुई हैं ।"

"उन्हे आदर पूर्वक अन्दर भेज दो ।"

"जो आज्ञा—" कह कर द्वारपाल उन्हे लेने के लिए बाहर चला गया ।

थोड़ी देर के उपरान्त ही द्वार खुला ।

राजकुमार दुर्धर्ष के नेत्रो ने देखा—

दो सुन्दर नवयुवतियाँ–गेरवे वस्त्र धारण किए हुए ।

"युवराज ! हम आज तुम्हारे से राजकुमारी दुर्धरा के विषय में कुछ कहना चाहते हैं"—उनमें से एक योगिनी ने कहा ।

"क्या हुआ है राजकुमारी को ? आप शीघ्रता के साथ कहे देवी ।"

"घबराने की आवश्यकता नहीं है युवराज । वे सकुशल विद्याध्ययन कर रही हैं।"

"मैं तुम्हे यह बताना चाहती हूँ कि वे मौर्य-कुमार से विवाह करना चाहती है।"

"विवाह ! लेकिन उसने मुझसे आज तक यह बात नही कही देवी।"

"इसीलिए तो मुझे कहनी पड़ी युवराज ।"

"देवी ! वैसे तो उसकी पसन्द अति उत्तम है लेकिन..."

"लेकिन क्या युवराज ?"

"वह लाघव-राज्य का उत्तराधिकारी है ।"

"राज्य का लाघव होना, स्नेह मे बाधक नही होना चाहिए युवराज ।"

"यह तो आप ठीक कहती है, देवी ! लेकिन मौर्य-कुमार ने यवन प्रदेश जाते हुए भी मुझे अपनी इच्छा से अवगत नही किया ।"

"वह बड़ा स्वाभिमानी है...इसी हेतु न कह सका होगा ।"

"क्या आप उन्हे जानती हैं।"

"हाँ।"

"कैसे ?"

"वह पाटलिपुत्र की राजकुमारी को विवाह के आग्रह करने पर उसे ठुकरा चुका है ।"

"आपने यह बात कैसे जानी ?"

"मैं भी पाटलिपुत्र की रहने वाली थी ।"

"क्या राजकुमारी में कोई दोष था ?"

"नहीं ! वे सर्वगुण सम्पन्ना थी ।"

"फिर उसके विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकृत क्यो किया ?"

"उसके अनुचित घमंड के कारण..."

"देवी ! मुझे कल ही कुछ भाटों द्वारा ज्ञात हुआ है कि पाटलि-पुत्रकी राजकुमारी ने वृषल के वियोग में योगिनी बन कर रात्रि के

प्रगाढ़ अन्धकार में राज-प्रसाद को त्याग दिया है । सम्राट् ने उनकी खोज के सभी ओर लिए गुप्तचर छोड़े हुए हैं ।"

"हाँ, यह सच है युवराज ।"

"क्या मेरे सन्मुख योगिनी के वेश मे पाटलि-पुत्र की राजकुमारी सुनन्दा तो नही हैं ।"

"युवराज ! मै योगिनी हूँ किसी सम्राट् की पुत्री नही?"

"मै अपने कथन पर अविश्वास नही कर सकता देवी ! फिर तक्षशिला मे पूजनीय शकटार और आदरणीय गुरुदेव द्वारा भी आपका विशेष मान हुआ, था इसलिए मै निश्चय के साथ कह सकता हूँ कि आप ही राजकुमारी सुनन्दा हैं ।"

"युवराज ! योगिनी के वेश में राजकुमारी का भ्रम मत करो ।"

दुर्धर्ष ने सब कुछ समझ कर बात परिवर्तन करते हुए कहा ।

"क्या वृषल के सम्बन्ध में कोई इच्छा विशेष है ?"

"नही युवराज ।"

"देवी ! अपनी अवस्था पर पुन. विचार करें ।"

"मेरी अवस्था बिल्कुल ठीक है युवराज ! मै अब राजकुमारी सुनन्दा नहीं; बल्कि एक योगिनी हूँ, जो कि जनहित साधनों में ही अपने को अर्पित कर चुकी है ।"

"माता ! क्षमा कीजिएगा इन शब्दों को । मैं इस विषय में पिता जी से परामर्श करूँगा ।"

योगिनी सुनन्दा ने युवराज का उत्तर पाकर वहाँ से ईरान की ओर प्रस्थान किया ।

११
★★★

"राजकुमारी दुर्धरा"

"कौन ? नन्दिनी ! आओ सखी ! मै बहुत देर से तुम्हारी राह देख रही थी ।"

"राह और मेरी...क्यो परिहास करती हो कुमारी ? राह मेरी नहीं मौर्य कुमार की देखी जा रही है ।"

"तुम्हारा कथन मिथ्या है । मै उनकी राह देखने वाली कौन ?"

"यदि कुमारी ही उनके प्रति ऐसी भावना रखेंगी तो फिर वे किस के सहारे जीवित रहेंगे ?"

"मानव को जीवित रखने कीं शक्ति मानव में नहीं विधाता में है नन्दिनी ! वह जिसे चाहे जब तक इस नश्वर संसार में सुख दुःख के लिए छोड सकता है ।"

"यह ठीक है कुमारी; लेकिन मैं देख रही हूं कि आप कुछ दिनो से खोई २ सी रहती हैं...वह कौन सा दुःख है, जिसने मेरी प्रिय सखी का कमल से मुख को क्लान्त कर डाला है...क्या उस पुरुष से मुझे अवगत नहीं करोगी सखी ?"

"नन्दिनी ! मैंने एक अमूल्य वस्तु खोदी है । मैं बारम्बार उसी का पश्चात्ताप किया करती हूँ ।"

"अमूल्य वस्तु, पश्चात्ताप ! यह गोरखधन्धा मेरी समझ में नही आया कुमारी ।"

"जिसे तुम गोरखधन्धा कहती हो, वही मेरे अन्तरतम की धधकती हुई ज्वाला है नन्दिनी ।"

"इन ज्वालाओं से दूर रहो कुमारी...नही तो यह भस्मसात कर डालेंगी ।"

"उनका काम भस्मसात करना है...तो मेरा काम मिटना रह गया है सखी ।"

"ऐसी अशुभ बात मुख से नहीं निकालिए ।"

"इस जीवन में अब रह ही क्या गया है ?"

"अभी तुमने देखा ही क्या है कुमारी ?"

"जब मैंने अपने आधार को ही पहचानने मे भूल की है...और अब मुझे क्या देखना शेष रह गया है ?"

"क्या आधार के रूप मे मौर्य कुमार तो नही ?"

"हां, नन्दिनी ! मै इस भेद को अधिक दिन गोपनीय नही रख सकती हूँ।"

"यह विषय तो चिन्ता का नहीं सखी ! वे शिक्षा अध्ययन के उपरान्त शीघ्र ही लौट आयेंगे ।"

"नन्दिनी ! यह क्यों भूल जाती है कि वह यवन प्रदेश है ? यदि किसी को इस बात का तनिक भी सन्देह हो गया कि मौर्य कुमार का शिक्षा अध्ययन करना राजनीति की चाल है तो वे कदापि भी जीवित नहीं लौट सकते ?"

"यह तो सत्य है राजकुमारी ।"

"और भी कुछ सुना तुमने नन्दिनी ।"

"नहीं तो ।"

"कल भाई साहब बतला रहे थे कि उनका समाचार आया था। विद्याध्ययन सुचारु रूप से चलता हुआ लिखा था। उसमें हेलेना के व्यवहार की बहुत प्रशंसा की थी।"

" यदि कही वे उस पिशाचिनी के जाल में फंस गये तो ।"

" मौर्य कुमार ऐसे नही है कुमारी ।"

"तुम्हारी बात ही सत्य हो—" वे सकुशल लौट आयें तो मैं अपनी

तपस्या को सफल समझूँगी—" राजकुमारी ने नीरव पथ की ओर देखते हुए कहा।

"राजकुमारी !"

"हाँ, नन्दिनी !"

"कुछ सुना आपने।"

"क्या ?"

" पाटलि पुत्र नरेश...पिप्पली कानन पर शीघ्र ही एक विशाल सेना के साथ आक्रमण कर रहे हैं।"

"कारण..."

"उन का सन्देह है कि योगिनी वेश में राजकुमारी पिप्पली कानन में ही रही।"

"सन्देह की तो कोई सार्थकता नहीं होती है।"

"उस पापी के लिए सार्थकता की आवश्यकता नही है कुमारी। वह नराधम अपनी आकाक्षा की पूर्ति हेतु सब कुछ कर सकता है।"

"यह तो मौर्य नरेश के लिए बड़ी विकट परिस्थिति है। उनका पुत्र भी उनके पास नही है।"

"इसी कारण मौर्य नरेश कुछ चिन्तित हैं।"

तुम्हें यह सूचना कहां से मिली थी ?"

"पिता जी कह रहे थे।"

"उन्होंने कहाँ सुना था यह समाचार ?"

"इसकी चर्चा पाटलिपुत्र मे खूब हो रही है; लेकिन किसी मे महाराज के विरूद्ध बोलने का साहस नही है।"

"क्या गुरुदेव इस समाचार से अवगत हैं...?"

"अवश्य होंगे...महामात्य शकटार का शुभचिन्तक अवन्तक अब भी सम्राट्र के विश्वसनीय सेवको में है कुमारी।"

"क्या तुम मेरा एक काम कर सकोगी नन्दिनी ?"

"आज्ञा कीजिए कुमारी।"

"यह समाचार यथा शीघ्र ही युवराज दुर्धर्ष तक पहुँचा दो ।"

"वे इस समय कहा होंगे कुमारी ?"

"राजधानी में ।"

"नन्दिनी को कहा भेज रही हो बेटी ?"

युवराज दुर्धर्ष के पास ।"

"किस कामना के हेतु ?"

"आक्रमण की सूचनार्थ गुरूदेव ।"

"इसकी अब आवश्यकता नही है बेटी ।"

"ऐसा क्यो गुरुदेव ?"

"युवराज स्वयं आते ही होगे ।"

"जैसी इच्छा गुरुदेव ।"

चाणक्य ने पुलकित नेत्रो से राजकुमारी दुर्धरा की ओर देखा... और मुस्कराते हुए अपने कक्ष की ओर प्रस्थान कर गये ।

रापकुमारी दुर्धरा के नेत्र अपलक दृष्टि से उस राजनीति के पुतले को निहारती ही रह गई ।

१२

★★★

"महामत्री कात्यायन !"

"क्या आज्ञा है देव ?"

"हम विशाल गुप्त को कुचला हुआ देखना चाहते हैं ऋषिवर ।"

"अपने बोये हुए अन्कुर को स्वयं न उखाड़िए देव... इससे आप की महती निन्दा होगी ।"

"नन्द का आदर उसकी शक्ति है महामंत्री कात्यायन ।"

"अभी समय है, सोच कर कदम उठाइये देव ।"

"नन्द ने कभी सोचना नही सीखा है, वह सदैव अपनी इच्छा की पूर्ति चाहता रहा है।"

"यह इच्छा आप के लिए घातक होगी देव ! अलिकसुन्दर के आक्रमण से बचने के लिए विशालगुप्त से मत बिगाड़िए ... वे एक कुशल सेनापति के साथ साथ अब भी राजभक्त है।"

"राजभक्त"—अट्टहास गूंज उठा। "साम्राज्य का अपमान करने वाला जब राजभक्त हो सकता है महामन्त्री कात्यायन, तो देशद्रोही किसको कहा जाएगा.?"

"आपके समझने की भूल है देव।"

"अब हम उस भूल का ही आलिंगन करना चाहते है ऋषिवर।"

"जैसी देव की इच्छा।"

"सेनापति।"

"महाराज।"

"कितनी सेना तैयार है?"

"एक लाख के लगभग।"

"पचास हज़ार सेना को लेकर अभी पिप्पली-कानन की ओर प्रस्थान करो।"

"जो आज्ञा देव।"

"और सुनो...विशालगुप्त जीवित या मृत यहाँ पर उपस्थित होना चाहिए।"

"महाराज़।"

"क्या कहना चाहते हो सेनापति .. ?"

कूच करने से पूर्व मैं कुछ दिनो का अवकाश चाहता हूँ महाराज।"

"अवकाश..." धननन्द महाराज ने चौंक कर दोहराया।

"यह तुम क्या कह रहे हो सेनापति ?"

सेनापति नतमस्तक किए महाराज के सन्मुख खडा रहा। वे कहते गए।

"यह राजाज्ञा का उलंघन है...जानते हो नन्द के राज्य मे इसका दन्ड क्या है ?"

"महाराज ! मेरा यह अभिप्राय: घिल्कुल भी नही हं।"

"इसका आशय और क्या हो सकता है ? शायद तुम विशाल-गुप्त पर इसलिए आक्रमण नही करना चाहते कि वह तुम्हारा सखा रहा है।"

"यह तुम भूल कर रहे हो सेनापति...राजनीति के क्षेत्र मे पिता भी शत्रु बन सकता है—महाराज ने क्रोधावेश मे कहा।

"विशालगुप्त मेरा सखा नही, बल्कि प्रतिद्वन्दी रहा है...और मैं यह भी जानता हूँ कि इससे शुभ अवसर, मेरे अन्तरतम की आग को बुझाने के लिए नही मिलेगा।"

"फिर इस अवसर को क्यों खोना चाहते हो ?"

"कौन जानता है इस युद्ध की शतरन्ज का पासा किस ओर पडे ? अत: मैं कन्या के विवाह से निवटना चाहता हूँ।"

"विवाह..." महाराज चिघाड़ उठे—"यह कदापि नही हो सकता सेनापति। विवाह से पहले युद्ध होगा...यही मेरा अन्तिम आदेश है।"

सेनापति ने धननन्द की क्रूर आँखों को देखा—

और स्वयं युद्ध की तैयारी के लिए राजसी अभिवादन करके प्रस्थान कर गया।

१३

★★★

मौर्य नरेश विशालगुप्त ने पाटलिपुत्रीय पचास सहस्त्र सेना को देखा.. वह पिप्पली कानन मे शिविर डाले युद्ध की प्रतीक्षा कर रही थी। उन्होंने महामात्य शकटार और गुरुदेव चाणक्य से भी सहायता माँगी थी। उनकी सहायता और पर्वतीय नरेशों की सहायता यथा समय गोपनीय ढंग पर पहुँच चुकी थी। इतना सब कुछ होते हुए भी वह केवल २५ सहस्त्र सैनिक एकत्रित कर सके थे। इतनी विशाल सेना से समक्ष युद्ध करना अपनी पराजय को निमन्त्रित करना था। मौर्य नरेश ने तनिक सोचा। फिर अपनी सेना को शत्रु सेना के पिछवाड़े तथा पार्श्वों मे लगा दिया। पाटलिपुत्रीय सेनापति इस कार्य को नही देख सका।

युद्ध की तैयारी होने लगी।

अर्धरात्रि का प्रहर बीता।

विशालगुप्त छद्म वेश मे विपक्षी सेनापति के शिविर में पहूँचे।

सेनापति चिन्ता मे मग्न शिविर में टहल रहे थे...

सहसा उनके मुख से निकला—

"मौर्य नरेश विशालगुप्त ! शत्रु शिविर मे अर्धरात्रि को एकाकी...

"हाँ सेनापति।"

"लेकिन आपने अपने प्रतिद्वन्द्वी पर इतना विश्वास कैसे किया मौर्य नरेश ?"

"वह मानता हूं कि तुम मेरे शत्रु हो, लेकिन धर्म के शत्रु नही ।"

"इस युद्धमे यह धर्म अधर्म कैसा गुप्त ?"

"यदि यह युद्ध अधर्म न होता तो मै शायद तुम्हारे सन्मुख न आता ।"

"कथन कीजिए गुप्त ।"

"आज तुम और तुम्हारी सेना चादी के टुकडों को हलाल करने के लिए इस अन्याय पूर्ण युद्ध के लिए संलग्न है ।"

"आप साम्राज्य का अपमान करके भी इस युद्ध को अन्याय पूर्ण बतला रहे हैं !"

"यदि मैने साम्राज्य का अपमान किया था...तो मुझे महाराज नन्द ने वही स्वयं क्यो नही बन्दी बना डाला था ? आज पुत्र का दंड पिता को देने चले हैं । यदि नन्द ने राजकुमारी से विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया था तो इस में मेरा क्या दोष था...।"

"दोष पूछते हो गुप्त ! आपको कुमार को समझाना चाहिए था ।"

"ऐसा करना और पुत्र की इच्छा के विरुद्ध भी कदम उठाना शास्त्रो के विरुद्ध था सेनापति ।"

"आपने राजकुमारी को वापिस क्यों नही भेजा ? इसी का कोप आपको देखना पड़ रहा है ।"

"यह कोप नहीं प्रपंच है सेनापति । इसी के आधार पर यह अपना काँटा निकालना चाहता है । यदि राजपुत्री योगिनी वेश में मेरे राज्य मे दो चार दिन रह गई तो उसका पता मुझे कैसे लग सकता था ? मेरे गुप्तचर विभाग को इस बात का तनिक भी संशय नही था । फिर स्वयं उन्होंने ही अपने साम्राज्य में ही क्यो न खोज निकाला ? अब तुम ही सोचो यह कार्य धर्म का है या अधर्म का ।"

"यह तो धननन्द का अनौचित्य है गुप्त ।"

"फिर इस रोग कौ दूर करो ।"

"इस की औषधि का भी कथन कीजिए ।"

"अभी अचेतन अवस्था मे रहिए। मेरी सेना आक्रमण करेगी... आपके कुछ सहस्त्र सैनिक बन्दी बन जायेंगे.. इस युद्ध में खून खराबी न हो सकेगी।"

"जैसी इच्छा।"

उत्तर पाकर छद्मवेश मे ही विशालगुप्त ने अपनी सेना की ओर प्रस्थान किया। एक घन्टे के उपरान्त पाटलिपुत्र सेनापति ने सुना।

भयंकर आक्रमण।

युद्ध हुआ।

उस रात्रि मे विशालगुप्त ने महाराज धननन्द की सेना को पराजित कर दिया।

परन्तु महाराज इस भयंकर अपमान को भूल न सके।

उन्होंने महाबलाधिकृत को ऋषिवर कात्यायन और विशाल सेना के साथ आक्रमण के लिए भेजा।

थका हुआ शेर...

विशाल सेना के आगे ठहर न सका—

वह पराजित होकर तराई वाले राज्य मे चले गए।

नन्द की सेनाएँ पिप्पली कानन पर अपना अधिकार जमा कर के वापिस लौट गईं। इस पराजय ने विशालगुप्त को नन्द-साम्राज्य का घोर शत्रु बना दिया।

महामात्य शकटार और चाणक्य को राजनीति कार्य को पूर्ण करने के लिए तक्षशिला का महाविद्यालय छोड़ कर विशालगुप्त के राज्य में जाना पड़ा। तक्षशिला-नरेश की मृत्यु के हो जाने पर युवराज आँभि ने गद्दी सम्भाली; परन्तु पिता की नीति को न भुला सका।

चाणक्य ने अपना प्रतिशोध लेने के लिए अंबष्ट, शिवि, मद्र, त्रिगर्त, क्षुद्रक, योधेय, मालव, म्लेच्छ, चोर, आश्वकायन, कट, किरात, काम्बोज, भूपाल और आटविको को संगठित करके उन्हें

युद्ध शिक्षा मे निपुण किया । ये सबके सब चाणक्य के उपदेशो को सुन-सुन कर नव-नन्द वंश के घोर शत्रु बन गए । सैन्य के लिए धन भी एकत्रित किया गया । भूतपूर्व महामात्य शकटार ने भी यथा शक्ति चाणक्य के कार्य मे पूर्ण सहयोग दिया । काला ब्राह्मण उसी समय से महात्मा चाणक्य हो गए ।

१४
***

"अब तुम्ही इन्साफ से कह दो, ये शाने मोहब्बत है,
मुझे रूसवा करो और फिर कहो तुम से मोहब्बत है

रात्रि का पहर बीत रहा था ।

अलिक सुन्दर की सेना अपनी विजय के उत्सव को मना रहीं थीं ।

मशालो की रोशनी में उन के उल्लसित चेहरे चमक उठते थे ।

अलिकसुन्दर अपने डेरे मे बैठा भावी कार्यक्रम बना रहा था ।

उसके समर्थन के लिए उसका सेना नायक सेल्यूकस उसके समीप ही बैठा था ।

लेकिन एक व्यक्ति और भी था ।

जो कि किसी के सौन्दर्य का शिकार होकर
मदमाती आखों मे लाल लाल डोरे बना कर
मदहोशी को गले लगा रहा था ।

उसकी गुनगुनाहट की लहरो से ऊपर का शेर बन जाता था।

वह था–
सिकन्दरी सेनापति फ़िलिपस

उसके हाथों में झूम रहा था ।
षोडसो कन्या का सुन्दर चित्र ।

उस कामिनो की मुस्कराहट इसके हृदय मे टीस बन चुकी थी ।

उस टीस की चुभन को वह घोल देना चाहता था मदिरा की मादकता मे।

बोतल खुली...

उसकी मादकता की कड़वी सुगन्ध डेरे मे फैल गई।

पैग भरे और खत्म हुए।

पैर लड़खड़ा उठे।

चित्र हाथ से छूठ कर बिस्तर पर जा पड़ा।

तभी उसकी लड़खड़ाती जबान से निकला।

"ऐसे छूटने से क्या हुआ ? दिल से छूटो तो जानूं...यह क्या तुम मुस्करा... रही हो ? और मै" ... हिचकी आई... तुम्हारे वियोग में झुलसा जा रहा हूँ...हेलेन ! प्यारी हेलेन ! तुम्हें क्या पता है कि मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ...जी चाहता है कि मै तुमसे प्रेम की पीर को कह दूँ... लेकिन तुम उस विदेशी के मोह में ऐसी फँसी हो कि मुझसे बात ही नही करती... तुम्हारी खातिर ही अपने देश को छोड़ कर टक्करें मार रहा हूँ... मानोगी हेलेन।"

फिलिप थोड़ी देर तक मुग्ध नेत्रों से उस चित्र को देखता रहा... फिर उसने दोहराया।

"अब तुम्ही इन्साफ से कह दो..

"क्या इन्साफ से कह दूँ सरकार ... ?" शहरयार ने डेरे में प्रवेश करते हुए कहा...

बोझिल आंखों ने देखा...

उसका सच्चा साथी शहरयार उसके सन्मुख कह रहा है—"

"आओ शहरयार।"

शहरयार आगे बढ़ा।

"कुछ किया तुमने।"

"सरकार ! बड़ी तीखी छोकरी है। खुदा कसम ऐसी तो जिन्दगी मे पहले कभीं नहीं देखी... हमेशा उस विदेशी के साथ ही बात

करती है, उसी के साथ घूमती है...और तुम्हारी तो उसे तनिक भी चिन्ता नही।"

"तीखी है ... तभी तो फिलिप के हाथो से बची हुई है।"

"फिर क्या किया जाये सरकार ?"

"हेलेन को कब्जे मे लाना होगा।"

"यदि उसने सेल्यूकस से कह दिया..."

"तब क्या होगा ?"

"सर धड़ से अलग होगा सरकार। इसी लिए कहता हूँ सरकार आप इसे छोड़ें... इससे भी अधिक सुन्दर आपके कदम चूमने को तैयार है।

"ऐसा करना मेरे हाथ की बात नहीं शहरयार।"

"फिर किस के हाथ की बात है ?"

"दिल..."

"दिल का सौदा कही मौत न बन जाए सरकार।"

"हम यूनानी मौत से नहीं डरते।"

"तो फिर किससे डरते हैं ?"

"प्यार की मार से।"

"कैसी होती है सरकार ?"

"बड़ी तीखी..

"अब क्या आज्ञा है सरकार ?"

"हेलेन के पीछे छाया की तरह लगे रहो... लेकिन उसे शक न हो...और उसकी सारी बातें मुझे बताया करो।"

"सरकार ! एक बात कहूँ।"

"कहो ?"

"उस विदेशी को रास्ते से ही क्यों नहीं हटा देते ?"

"यह मुश्किल काम है शहरयार ! वह छोकरा सारी विद्याओं में होशियार है। सारे उस्ताद उसकी कदर करते है।"

"धोखे से..."

"वह मेरे साथ कभीं जाने को तैयार नहीं होगा।"

"तो फिर..."

"कोशिश करते रहो।"

"तभी ईरान के घन्टे ने दो का घन्टा बजाया।"

नींद ने फिलिप को आ घेरा..."

वह बिस्तरे पर लुढक गया...

शहरयार ने उसे सोता हुआ देखा।

वह अर्धरात्रि में डेरे से बाहर निकला।

और अन्धकार में विलीन हो गया।

१५

***

उसका हृदय भी डांवाडोल हो उठा।

दुर्धरा के सच्चे अनुराग ने ईरान में बैठे हुए नवयुवक के हृदय को बेचैन कर डाला।

जिस ने कभी इस विषय में ध्यान न किया था, वह भी उस में बह उठा।

प्रातः काल का समय था।

वह अपने कक्ष मे बैठा अतीत की स्मृतियो से खेल रहा था।

उसका स्नेही वाद्य उसके सन्मुख रखा था।

जब कभी भी उसका अन्त.करण विह्ल हो उठता था तो...

वह उस वाद्य के साथ अपने अन्तःकरण के भावों को प्रगट कर लेता था।

आज की रात वह करवटें बदलर कर बिता चुका था।

आज बारम्बार उसे दुर्धरा की याद आ रहीं थी।

मिलन में अभी काफी समय शेष था ।

"अब क्या हो..." उसके अन्त:करण से निकला ।

उसके हाथ सहसा वाद्य के तारो से खेलने लगे ।

एक सुरीली तान ईरान के वातावरण में गूँज उठीं ।

और उनके मुख से निकला...

वह अपने गीत में झूम उठा...

(तुम सुन सकोगी, क्या कभी रोते हृदय का गान मेरा ?

शशि किरण मुझको जलाती, प्रणय नौका डगमगाती,

सुखद स्मृतियाँ वेदना की, कल्पनाएँ है जगाती ।

विविध रगों मे बदलता अहर्निश चंचल चितेरा ।।

तुम सुन सकोगी, क्या कभी रोते हृदय का गान मेरा ?

प्यास से व्याकुल दृगो में, जल कभी रुकने न पाया,

तुम न मुझ को भूल पाई, मैं तुन्हे मिलने न पाया ।

शशि निकलने भी न पाया, हो गया स्वप्निल सवेरा ।।

तुम सुन सकोगी, क्या कभी रोते हृदय का गान मेरा ?

सजल दृग घन थक गए, पर विरह ज्वाला बुझ न पाई,

मैं मिटा तब याचना में, वासना मिटने न पाई ।

सच कहो ! क्या चाँदनी का मूल बन जाता अन्धेरा ।।

तुम सुन सकोगो, क्या कभी रोते हृदय का गान मेरा ?

वे गीत मे वेसुध से हो उठे ।

तभी कक्ष का द्वार खुला ।

"किस को सुनाना चाहते हो हृदय का गान... ?" हेलेन ने प्रवेश करते हुए पूछा ।

"तुम—" चन्द्रगुप्त ने स्तब्ध नेत्रों से उस सुन्दरी को देखा ।

"मौर्य साहब ! आज हम सैर के लिए आपको ढूंढते२ थक गये... और एक आप है जो किसी वेवफा के लिए गमगीन बैठे ?"

"वेवफा नहीं देवी ! उस का इस में क्या दोष ? मै अपने अन्तर के भाव उसे न बता सका और लम्बी अवधि के लिए इधर चला आया। क्या आप मेरी भाषा को समझ सकती है ?" चन्द्रगुप्त नेकहा।

"समझ तो लेती हूँ मौर्य साहब ! लेकिन बोल नहीं सकती..."

"वह सहस्रो में एक है फिर भी मैं प्रणय का अनुनय न कर सका" हेलेन।"

"क्या शादी न होने का खतरा है ?"

"मुझे तो ऐसा नही लगता।"

"तो फिर..."

"मै स्वयं कहना नही चाहता।"

"तो फिर आप को भी बुलन्द खयालात का शहजादा समझा जाये'

"यह तो अपने अपने विचारों का सौदा है।"

"आप औरत की खूबसूरती को किस दृष्टि से देखते हैं...?"

"नारी का वास्तविक सौन्दर्य उसका स्वास्थ्य है। साफ़ रंग, इकहरा बदन, चन्द्रमुख, खंजन से नेत्र, पतली कमर और इन सब से बढ कर उसका आचरण आदि सौन्दर्य के उपादानो मे है।"

"इस बारे में मैं आपके नज़रिए से बिल्कुल सहमत हूं मौर्य साहब।"

हाँ इतना और बताइएगा कि जनोशु में किस प्रकार का प्यार हिन्दुस्तान में अच्छा समझा जाता है ?"

"भारत में निष्कपट प्रेम को अधिक महत्व दिया जाता है। विवाह करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि वधू वर से चार-पाँच वर्ष छोटी होनी चाहिए।"

"यह सब रिवाजें तो यूनान में भी हैं। क्या हिन्दुस्तान में औरत को उसका खाविंद अपना गुलाम नहीं समझता ?"

"ऐसा तो नहीं है।"

"आपके यहाँ लड़की का विवाह किस उम्र में कर दिया जाता है ?"

सोलह वर्ष के उपरान्त योग्य वर के मिलजाने पर विवाह सम्पन्न हो जाता है"

"लेकिन हमारे यहाँ ऐसा नही है। शादी के मौके पर लड़की की उम्र कम से कम हमारे यहाँ अट्ठारह वर्ष की होती है"

"तो अभी आप भी इससे बहुत दूर है ।"

"अभी तो मै डैडी के लिए बिल्कुलगु ड़िया ही हूँ मौर्य साहब। बड़े दिन से मैं आपसे एक बात पूछना चाहती थी...लेकिन इतना अवसर ही नही मिल पाता था—सोचती हूँ कि आज उसको भी पूछ डालूँ।"

"अवश्य पूछिए..."

"आप अपने देश को छोड कर यहाँ पर आए हैं ! क्या फौजी तालीम हिन्दुस्तान में अच्छी नहीं दी जाती है ?"

"मेरे यहाँ आने का कारण यह नही है कुमारी हेलेन ! मुझे वैसे ही विविध तरह की विद्या सीखने की इच्छा रही है; जिसके वशीभूत होकर मैं इधर चला आया हूँ ।"

'अच्छा ठीक ! हमने मौर्य साहब आपके हिन्दुस्तान के बारे में अजीबो-गरीब बाते सुनी है...हमे, तो उन पर यकीन नही आता"

"वे कौनसी बाते है ?"

"जादू के बारे में है। सुना है वहाँ इन्सान को मक्खी बना दिया जाता है।"

"ऐसा तो नहीं है ! हाँ ईरान के जादू के समान ही वहाँ पर भी थोडे बहुत तिलिस्मी खेल दिखा दिए जाते है।"

"वे कैसे होते है ?

"यही जीवित सर्प को खाजाना, जलती हुई आग पर सोजाना, आग को खाजाना, ताश का जादू, हाथ की सफाई, निगाह बाँध देना आदि।"

"ये सब बातें आपने खुद देखी हैं"

"जी हाँ।"

थोड़ी देर तक निस्तब्धता रही ।

हेलेन देसी बाद्य से खेलती रही ।

चन्द्रगुप्त उसकी रूपसुधा का पान करता रहा ।

"कुमारी हेलेन ! सेनापति फिलिप तुम्हारे से बातें करने का बहुत प्रयत्न करता है, परन्तु तुम उसे मौका ही नही देती ।"

"उस नालायक की बात मत करो मौर्य साहब...वह बहुत कमीना आदमी है । हम दोनो को देख कर जलता है । अबकी बार मै उसे फटकार दूंगी"—कुमारी हेलेन ने रोष में कहा ।

"वह आपके देश का हे कुमारी हेलेन ।,'

"इसी बात का तो दुःख हे मौर्य साहब...कि एक हिन्दुस्तानी यूनानी की बेवकूफी का नक्शा अपने साथ लिए जा रहा है ।"

"तुम्हे अपने देश पर गर्व है ।"

"हरेक आदमी को अपने देश पर होना चाहिए ।"

"तुम्हारे इन विचारो से मैं बहुत सहमत हूँ ।"

"ओह बहुत समय होगया है...अब चलने के लिए इजाजत चाहती हूँ । फिर कभी आपसे बातचीत की जाएगी मौर्य साहब ।"

"बहुत अच्छा ।"

उत्तर सुन कर यूनानी सौन्दर्य की पुतली मदमाती चाल से कक्ष से बाहर निकली और घोड़े पर चढ़ कर अपने गन्तव्य स्थान की ओर चलदी ।

१६

★★★

"अब मुझ से बरदाश्त नहीं हो सकता..."

"क्या बरदाश्त नहीं हो सकता— ?" हेलेन ने रुखाई के साथ पूछा ।

"यही कि साहबजादी एक विदेशी के साथ वक्त जाया करती फिरें ।"

"आप मुझे रोकने वाले कौन है ? मेरे डेडी ने आप को मेरा वली मुक़र्रर नहीं किया है फिलिप साहब... इस लिए मैं जरूरत नहीं समझती की आप छाया के समान मेरा पीछा करते फिरें ।"

"माफ कीजिएगा मिस हेलेन ! आप को यह खिदमतगार किसी कीमत पर भी नाराज नही करना चाहता है ।"

"और बाते तो अब बाद मे होंगी मि० फिलिप ! लेकिन मैं यह पूछना चाहती हूँ कि इन बदतमीज़ी हरकतों को करने से आपकी मंशा क्या है ?"

"मैं आप से शादी..."

"शादी... हेलेन जोर से चीख उठी—"तुझ मुए की यह हिम्मत कि वालिद माजिद का खिदमतगार होकर उनकी साहबजादी के साथ शादी का खयाल करे... मै आज ही वालिद साहब के सामने यह अर्ज पेश करुंगी कि उनका मातहत हमारी तौहीन करने पर तुला हुआ है ।"

"इस गुस्ताखी को माफ कीजिएगा... मिस साहेबा !" फिलिफ ने गिड़गिड़ाते हुए कहा... "आगे ऐसा कभी नही होगा।"

'बहुत अच्छा ! अभी यहां से तशरीफ का टोकरा ले जाइयें...
और सुनो ! अब आगे कभी इस ओर आने की जुररत न करना।"
इतना कह कर हेलेन हाथ में गुलेल लिए पत्थर पर बैठ गई।
फिलिप डगमगाते कदमों से अपने कक्ष की ओर लौट आया...

सूर्य की अन्तिम किरणें ईरान की ऊँची २ प्राचीरो से अन्तिम विदा ले रही थी ।

हेलेन सामने पेड पर बैठे कपोती के जोडे को निहार रही थी ।
वह दम्पति संध्या की बेला में सुख का आनन्द ले रहा था ।
सहसा हेलेन की गुलेल छूटी।
निशाना अचूक था।

कपोत पत्थर की चोट खाकर ज़मीन पर आ गिरा...

कपोती अपने प्रियतम को असहाय अवस्था में ही छोड़ कर दूसरी ओर को उड़ गई।

तभी सहसा किसी की ध्वनि सुनाई दी ?
वह कह रहा था...
"यह अच्छा नहीं किया।
हेलेन ने पीछे की ओर मुड़ कर देखा...
मौर्य-कुमार उसी के पीछे खड़े मुस्करा रहे थे।
हेलेन अपने कृत्य पर स्वयं ही पश्चाताप करने लगी ।
चन्द्रगुप्त ने कपोत को उठा कर देखा...
पत्थर ने उसके पैर के समीप ही घाव कर दिया था।
रक्त बहने के कारण ही वह छोटा सा पक्षी निढ़ाल सा पड़ा था।

चन्द्रगुप्त ने उसके रक्त को साफ़ किया और कपड़े की पट्टी बाध कर उसे पेड़ पर बैठा दिया...और कहा—

'मिस हेलेन ! आज से वायदा करो कि मूक पशु और पक्षी को कभी भी पीड़ित नही करोगी।"

"वायदा करती हूं मौर्य कुमार कि आगे से ऐसा ही होगा।" थोडी देर चुप रह कर हेलेन ने कहा—"मौर्य कुमार। यहां पर कई रोज से दो औरतें आई हुई हैं जो कि गेरूवे वस्त्र धारण किए हुए हैं... उनमे से एक तो मुझ से भी ज्यादा खूबसूरत है।"

"तुम्हे कहा पर मिली थी ?"

"यही कक्ष के बाहर...वता सकते हो वे कौन थी ?"

"विना देखे कैसे बताया जा सकता है मिस साहबा ?"

"वे योग विद्या तो जरुर जानती होंगी।"

"अवश्य..."

"हमें भी कुछ दिखवाइयेगा।"

"पहले मैं देख लूँ...तभी कुछ निश्चित कर सकूगा।"

"क्या आप उन का पता लगा सकेंगे...?"

"ईरान मे विदेशियों का पता लगाना कठिन नही है।"

"अच्छा... पता लगने पर खबर दीजिएगा।"

"अवश्य..." इतना कह कर चन्द्रगुप्त हेलेन को वहीं बैठा छोड़ कर नगर की ओर चला गया।

अन्धकार की नीरवता को चन्द्र ने धो डाला था।

हेलेन भी उठी...

और उसके कदम कक्ष की ओर मुड़ गये।

१७

***

'मेरे नेत्र आज धोखा तो नही खा रहे है सुनन्दा। पाटलिपुत्र की एक मात्र राजकुमारी ईरान की वीथिका पर एक भिक्षुणी के रूप मे...यह अनोखा रूप...किस हेतु...नन्दवन्श ने ऐसा करने को स्वीकृति कैसे दी ?"

"सुनन्दा का जो रूप तुम देख रहे हो मौर्यपुत्र ! वह बिल्कुल ठीक है। उसमें भ्रमात्मक कीटाणओं को स्थान बनाने की तनिक भी छूट नही ! पाटलिपुत्र की राजकुमारी सुनन्दा का देहावसान तो उसी दिन हो गया था, जिस दिन उसके प्रणय को ठुकराया गया था।"

"प्रणय ठुकराया नही गया था राजकुमारी ! वह तो केवल समझने मात्र की भल थी।"

"राजकुमारी कह कर मुझे पाप का भागी मत बनाओ मौर्यकुमार ! मैं तो केवल एक भिक्षुणी मात्र हूँ, जोकि पर कल्याण हेतु स्थान-स्थान का पर्यटन कर रही है।"

"यह क्या कह रही हैं आप ? मैंने आपको समझने में वास्तव में भयंकर भूल की है। उसका प्रायश्चित मैं करना चाहता हूँ।"

"किस प्रकार से प्रायश्चित करना चाहते हैं आप ?"

"आप से विवाह करके।"

"ऐसे अशुभ वचन मुँह से मत निकालिए राजकुमार ! मैं अब आपकी प्रेयसी नहीं; बल्कि जगत-माता हूँ।"

"आप अपनी अल्पायु और द्रड़ परिश्रम पर तनिक पुनः विचार तो करिए।"

"विचार करके ही कदम आगे बढाया है।"

"आप पाषाणी न बने।"

"धर्म के सिए इससे भी बढ़ कर बनना पड़ा तो मै उसके लिए भी उद्यत हूँ।"

"मेरे प्रति आपका कोई कर्त्तव्य नही है।"

"उतना ही कर्त्तव्य है, जितना एक माता का पुत्र के प्रति होता है।"

"क्या आप स्नेह की भंवरों को इतनी शीघ्र तिलांजली दे सकेंगी ?"

"मौर्य-कुमार! वात्सल्य स्नेह को छोड़ कर मैं सब प्रकार के स्नेह को तिलाजली दे चुकी हूँ।"

"ऐसा करने से पूर्व मुझ से तो पूछ लेना था।"

"इसकी आवश्यकता नहीं समझी थी।"

"क्या मेरी मूर्खता का यही दण्ड उपयुक्त था ?"

"यह दण्ड नहीं है कुमार! आप की इन्कारी ने मुझे ईश्वरीय भक्ति की ओर प्रेरित कर दिया है।"

"आपने तो राह ढूंढ ली; लेकिन मैं किधर जाऊँ ?"

"आप के लिए भी मार्ग सुगम कर आई हूँ।"

"आप कैसी पहेली बुझा रहीं हैं... ?"

"पहेली नही सत्य है।"

"वह क्या ?"

"आपका विवाह राजकुमारी दुर्धरा के साथ निश्चित कर आई हूँ। आप जब भारत लौटेंगे तब ही यह पुनित कार्य गुरुदेव की सुसम्मति से होगा।"

"आप ने इतना कष्ट क्यों किया ?"

"परोपकार के हेतु... लेकिन अब यहां कुछ और ही दिखाई देता है ।"

"वह क्या ?"

"हेलेन का अनुराग..."

"क्या आप उससे...?"

"इसमें क्या भय है ? राजकुमारों के एकाधिक विवाह हुआ ही करते हैं ।"

"जैसी आपकी इच्छा ।"

"भविष्य में मुझसे दाम्पत्य प्रेम की भिक्षा मत मांगा करिएगा ।'

"ऐसा करना मेरे लिए कठिन है ।"

"तो पाप के भागी बनने के लिए तैयार हो ।"

"जो कुछ भी हो ।"

"अच्छा मौर्य-कुमार ! अब हम जाते हैं...यदा कदा भेट हुआ ही करेगी ।" इतना कह कर योगिनियाँ विचरणार्थ के लिए चली गईं ।

१८

★★★

प्रात. काल का सुहावना समय था। चन्द्रगुप्त एक घोड़े पर चढ़ कर भाले और धनुष के साथ मृगयार्थ निकल गया। उसने थोड़ी दूरी पर एक सुन्दर जल-प्रपात देखा। वह उसके स्वच्छ जल मे स्नानादि से निवृत होकर आगे की ओर बढ़ा। उसने देखा सामने ही पाषाँण निमित देव मन्दिर था...वह आर्यो द्वारा निमित सा प्रतीत होता था, क्योंकि मन्दिर के प्रत्येक भाग से ऐसा ही साकेतिक आभास सा दिखाई देता था। उसके सभी भागो मे यक्ष यक्षनियों की पाषाण मूर्तिया बडी सुन्दर बनाई गई थी। मन्दिर के सभी भागो में खुदाई का बहुत ही सुन्दर काम दृष्टिपात होता था। उसके पाश्वौ मे स्त्रियो के भिन्न-भिन्न अवस्थाओ के चित्र विद्यमान थे। इस मन्दिर मे सारी सभ्यता का दिग्दर्शन पाषांण प्रतिमा द्वारा ही करा डाला था। आज सभ्यता के इस रूप को मौर्य-कुमार देखता ही रह गया। तभी उसे घोड़े दौड़ने की ध्वनि सुनाई दी।

चन्द्रगुप्त ने देखा...

फिलिप तेजी के साथ उसकी ओर ही आरहा था।

"कहिए मौर्य शहजादे! आप ईरान मे लड़ाई की तालीम पाने आए हैं...या कोई कुछ और लेने?" फिलिप ने घोड़े पर से उतरते हुए कहा।

"मैने यहाँ आकर किसी का अपकार नहीं किया है फिर इन अश्लील सम्भाषणो का प्रयोजन?"

"मेरे अरमानों को कुचल कर ऊपर से बजूहात पूछते हो ।"

"आपके अरमान कुचले जाएँ, ऐसा कार्य मैने नही किया है ।"

"अब झूट से काम नही चलेगा मौर्य-कुमार । आप निरे आस्तीन के साँप निकले ।"

"सेनापति—" चन्द्रगुप्त सक्रोध बोले—"अपने अपशब्दो को वापस लो, अन्यथा अच्छा नहीं होगा ।"

"अब इन गीदड़ भभकियों से काम नही चलेगा शहजादे... एक म्यान मे दो तलवारे नहीं रह सकती हैं । अब हमें तलवार के जोर पर ही फैसला करना पड़ेगा कि हेलेन किसकी है ?"

"अब समझा ! लेकिन याद रखो फिलिप ! तुम जैसे खूसट को हेलेन एक आँख देखना भी नहीं चाहती ।"

"उसके चाहने से कुछ नही होता ! सेनापति फिलिप जो चाहेगा वही होगा; लेकिन दोस्ती के नाते मैं फिर भी यही सलाह दूँगा कि आप अपने मुल्क को कल ही लौट जाइए । मैं इस प्रेम के मामले में तुम्हारे खून से हाथ नहीं रंगना चाहता हूँ ।"

"भारतीय खून बहाने से नहीं डरते हे सेनापति ! यदि मन में जोर अजमाने की ही इच्छा हे तो मैं भी तेयार हूँ ।"

"तुम अभी बच्चे हो यही मुझे ध्यान आता है...इसलिए अपने रास्ते से हटने के लिए बारम्बार कह रहा हूँ ।"

"सेनापति ! यह बालक बिना युद्ध किए पीछे हटने वाला नही है ।"

"तब कब ?"

परीक्षा-अवसर पर सम्राट् से आज्ञा लेने पर ।

"बहुत अच्छा..." इतना कह कर फिलिप घोड़े पर चढ़ कर वापस चला गया ।"

चन्द्रगुप्त मन्दिर के विशाल चबूतरे पर बैठ कर उक्त सम्भाषणों पर विचार करने लगा ।

१६

***

अलिकसुन्दर अपने सिंहासन पर बैठा भारतीय आक्रमण की मंत्रणा कर रहा है । महामंत्री सेल्यूकस अपने सिंहासन पर बैठे सम्राट् के प्रश्नों का यथोचित उत्तर दे रहे हैं । अन्य सभासद अपने-अपने स्थान पर सुशोभित हैं—फिलिप का स्थान रिक्त पड़ा है ।

"फिलिप अभी तक दरबार मे हाजिर नहीं हुए—" अलिकसुन्दर ने सेल्यूकस से प्रश्न किया ।"

"सम्राट् ! जिस दिन से भारतीय नौजवान ने उसे सभी तालीमों मे हराया है...तबसे उसका मूंह मुरझाया सा रहता है—वह अब रात दिन डेरे मे ही पड़ा रहता है ।"

"ठीक कहते हो सेल्यूकस ! वह नौजवान गजब का होशियार है उसके मानिन्द नौजवान हमें अपने दस्ते में दिखाई नही देता । यदि वह नौजवान इस लड़ाई मे हमारा साथ दे तो हमारी फतेह आसानी से हो सकेगी ।"

"आपके खयालात बजा है जहांपनाह ! उसे दरबार में बुला कर पूछ लिया जाए ।"

"ठीक है ऐसा ही करो ।"

"सेल्यूकस ने सम्राट् की इच्छा समझ कर दो यूनानी सिपाहियों को भारतीय नौजवान को दरबार में पेश करने के लिए भेजा ।

सिपाहियों ने हुक्म पाते ही उस नौजवान को दरबार में पेश कर दिया ।

चन्द्रगुप्त ने दरबार में प्रवेश करते ही सम्राट् को राजसी अभिवादन किया ।

अलिक-सुन्दर ने उस अभिवादन को सहर्ष स्वीकार करते हुए कहा—"हे जवांमर्द ! हम तुम्हारी बहादुरी के बहुत कायल हैं । इसके साथ ही तुम्हारी फौजी तालीम की लियाकत ने हमें इनाम देने के लिए मजबूर कर दिया है । हम तुम्हें दो अच्छे याबू इनाम के तौर पर देते हैं और चाहते हैं कि तुम सिपहसालार सेल्यूकस की मातहती में आलापद को सम्भालो—और हिन्द के हमले में हमारा साथ दो ।"

"देव का पारितोषक शिरोधार्य है, लेकिन मैं भारत के विरुद्ध विदेशी सम्राट् की सहायता करके देशद्रोही की उपाधि से सुशोभित नहीं होना चाहता । मैं भारतीय नरेश विशालगुप्त की ओर से मैत्री का हाथ अवश्य बढ़ाना चाहता हूँ..." चन्द्रगुप्त ने निडरता के साथ कहा ।

"नौजवान तुम्हारे इस स्वप्न को मैं कैसे मान सकता हूँ ?"

"यदि आप मैत्री करने के युक्त मेरे राज्य को नहीं समझते हैं देव तो मुझे देश लौटने की आज्ञा प्रदान की जाए ।"

"हुक्म देने पहले हम तुम्हारी शरायतों पर एक बार गौर करना अवश्य चाहते हैं नौजवान !"

"जैसी देव इच्छा ! मैं सप्त-सिन्धु के नरेशों को संगठित करके पाटलि-पुत्र नरेश को विध्वंश करना चाहता हूँ । इसी हेतु आपकी सहायता कर सकता हूँ; लेकिन विजयी होने पर मैं एक संगठित राज्य करना चाहता हूँ । उसके साथ आपका सम्बन्ध केवल मैत्री भाव का ही हो सकता है ।"

"यह नामुमकिन है नौजवान ! अलिक सुन्दर अपनी शमसीर की ताकत पर सारे हिन्द को जीतेगा...तुम्हें हम दोस्ती के स्थान पर नौकरी दे सकते हैं ।"

"क्षमादान हो देव ! यह भारतीय राजकुमार का अपमान है। यह सहन नहीं कर सकता । अब उसे जाने की आज्ञा दीजिए ।"

"शहजादे ! तुम जानते हो कि अलिक सुन्दर के सामने हो" ।

"हां देव ! मै इमसे भली भांति परीचित हूँ ।

"हिन्द जाकर क्या करोगे ?"

"देश की रक्षा ।"

'क्या हमारे ही इल्म से हमारा सामना करने की जुर्रत करोगे ?"

"इससे बचने का प्रयत्न करुंगा, लेकिन फिर भी मैं देश के प्रति कर्तव्य को नहीं भुला सकुँगा । आप स्वीकार न करेंगे मैं आपको वचन दे सकता हूँ ।"

"तुम हमारी शमशीर को रोक कर हमारी तौहीन करना चाहते हो।"

"जहापनाह गुस्सा मत कीजिए ! यह नौजवान कुछ पागल सा है ।"

"महामन्त्री यह पागल नहीं है...यह नौजवान सब कुछ कर सकता है ।"

"लेकिन देव ! यह देश-प्रेम को नही त्याग सकता—

चन्द्रगुप्त ने महामन्त्री को चुप देख कर कहा ।"

"नौजवान ! तुम हिन्द के खैरख्वाह होने के कारण हमारे दुश्मन हो । ऐसी हालत में हम तुम्हे मुनासिव सजा दे सकते हैं ।"

तभी महामन्त्री ने कहा—"नौजघान अब भी मौका है ! तुम सोचने का वक्त ले सकते हो...कैदी बनने से यह इज्जत की आजादी लाख दरजे अच्छी है ।"

"मैं पूर्णतया सोच चुका हूँ महामन्त्री । यदि मैं विद्यार्थी आपका शत्रु ही हूँ तो उसे दण्ड दीजिए ।"

"बच्चे कैद बहुत मुश्किल होती है ।"

"भारतीय क्षत्रिय किसी बात से नहीं डरा करता देव ।"

"तो मैं तुम्हें जिन्दा भेजने के लिए मजबूर हूँ शहजादे ।"

"आज्ञा का पालन कीजिए ।"

सेल्यूकस हथकड़ियाँ लेकर आगे बढ़ा—

चन्द्रगुप्त ने भरे दरबार में खुशी के साथ अपने दोनों हाथ आगे बढा दिए ।

भारतीय क्षत्रिय के करो मै लोहे की श्रखलाएँ चमक उठी । लेकिन उसका मस्तक गर्व से वैसा ही उन्नत रहा ।

पग बढते गए बन्दी घर की ओर ।

श्रृखलाएँ बजती रही...

अलिक-सुन्दर उस भारतीय नौजवान की निडरता पर सोचता रह गया ।

हेलेना का सच्चा अनुराग मौर्य-कुमार को अधिक दिन जेल मै न देख सका ।

और एक दिन अवसर पाकर मौर्य-कुमार को बन्दी-गृह से छुटकारा मिल गया । वे दोनों योगिनियों के साथ पौरव नरेश की राजधानीं में सकुशल पहुँच गए ।

सुनन्दा के यत्नों से उसी समय दुर्धरा का विधिवत पाणि ग्रहण संस-कार मौर्य-कुमार के साथ हो गया ।

२०

★★★

मई ३२६ ईसा पूर्व की प्रातः बेला मे...

अलिक-सुन्दर की ६० सहस्र सेना भारत की ओर कूच कर उठी ।

आक्रमण होने लगे ।

सीमा प्रान्त नरेश त्राहि २ कर उठे ।

यवनों के रण कौशल के आगे यह छोटे २ राज्यो की सेनाएं विजय न पा सकी

भारत के सीमा खण्ड परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ते गये ।

और अलिक सुन्दर विजय की उल्लासता में आगे बढ़ता गया ।
तभी उन्होंने हस्ती के प्रचड दुर्ग को घेरा ।
हस्ती नरेश ने बडी वीरता से सामना किया ।
३० दिन तक युद्ध चलता रहा
अन्त मे पराजित करके अलिक सुन्दर की सेना ने वाजोर और स्वात घाटी मे प्रवेश किया
आश्वकायन जाति और अन्भिक नरेश ने अलिक सुन्दर का सामना किया ।
लेकिन मारा गया...
इसके पुत्र ने इनके आधीनस्थ नरेश बनना स्वीकार किया ।
प्रजा उसका विरोध कर उठी ।
मसागा राज्य की भूमि रक्त से लाल हो उठी ।
यवनो के कई सहस्र सैनिक इस सँधर्ष को रोकने मे बलि चढ़ गए ।
अन्त मे विजय अलिक सुन्दर को मिली ।
तभी अलिक सुन्दर को तक्षशिला के शासक की ओर से पाच सहस्र सैनिको की सहायता मिली
तब अलिक सुन्दर निकेटर को सिन्ध नदी के पश्चिमस्थित देशों का शासक नियुक्त करके अटक से लगभग ८ मील की दूरी पर नदी को पार करके ओहिद पहुँचा
तक्षशिला नरेश आभि ने उसका स्वागत किया ।
लेकिन पौरव इसको सहन न कर सका ।
उसने अलिक सुन्दर को झेलम के परे ही रोकने के लिए अपने सुपुत्र दुर्धर्ष के सेनापतित्व में २०७० सैनिक भेजे ।
अलिक सुन्दर की विशाल सेना के साथ मुकाबला करना तो कठिन था ।
फिर भी भारतीय वीरों ने साहस नही छोड़ा ।
घमासान युद्ध हुआ ।

राजकुमार दुर्धर्ष अपने साथियों सहित वीर गति को प्राप्त हो गये ।

यवन सेना ने रात्रि में झेलम पार कर लिया ।

राजा पौरव को राजकुमार की मृत्यु का बहुत बड़ा आघात पहुँचा।

वे चन्द्रगुप्त को राजधानी की रक्षा निमित्त छोड़ कर एक विशाल सेना के साथ अलिकसुन्दर का मुकाबला करने के लिए बढे ।

इनकी सेना मे २०० हस्ती, ३०० रथ, ४००० अश्वारोही तथा ३०००० पैदल सैनिक थे ।

दोनों सेनाओ में घमासान युद्ध हुआ ।

भारत गौरव की विजय निश्चित सी ही थी कि भाग्य ने पलटा खाया—

उनके हस्ती बिगड़ उठे ।

उन्होनें अपनी ही सेना को कुचल डाला ।

सेना मे भगदड़ मच गई ।

लेकिन अन्तपर्यन्त तक पौरव युद्ध करता रहा ।

उस के शरीर में ९ घाव लगे ।

जिससे वह अर्ध मूर्छितावस्था में रणस्थल में गिर पड़ा ।

यवन सेना ने उस वीर को बन्दी के रूप में अलिक सुन्दर के सामने पेश किया ।

अलिक सुन्दर के नेत्रों ने उस निडर भारतीय सम्राट् को देखा ।

वह बेड़ियों में जकड़ा हुआ उसके सम्मुख अभिमान से खड़ा था ।

तभी अलिकसुन्दर ने पूछा—

"आपके साथ कैसा व्यवहार किया जाये ?"

"जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है..." पौरव ने निडरता के साथ उत्तर दिया

उत्तर को सुन कर अलिकसुन्दर बहुत प्रसन्न हुआ ।

उसने तुरन्त ही उसे मुक्त करने का आदेश दिया और अपने पास

मैत्री भाव से बैठाया ।

उनका राज्य तथा उपहार स्वरूप मे मसागा के कुछ प्रदेश देकर उन्हे सम्मान पूर्वक विदा किया ।

२१
***

व्यास नदी के पश्चिमी किनारे पर अलिक-सुन्दर की सेना उल्लास मना रही है ।

थोडी दूर पर उन के डेरे लगे हुए हैं ।

सैनिक अपनी इच्छानुसार काम कर रहे हैं ।

कुछ उनमें से मदिरा की मादकता मे अपनी थकान मिटाने का प्रयत्न कर रहे हैं ।

कुछ मास भक्षण करने के लिए आग पर रखी हुई हंडिया को बारम्बार देख रहे हैं ।

तभी एक बूढे ने लकड़ी को सरकाते हुए कहा—

"दोस्त ! बादशाह की मर्जी अभी वतन को लौटने की नहीं दिखाई देती ।"

"तुमने कैसे जाना ?"

"वह देखो सामने ! कैसी बेचैनी से चक्कर लगा रहा है । जब यह ऐसा करता है तो उसका मतलब यह होता है कि यह कोई मसला हल कर रहा है... और इसका मसला होता है सारी दुनियाँ को अपनी शमशीर से जीतना ।"

"लेकिन हम लोग अब आगे बढ़ने से इन्कार कर देगें ।"

तभी तैयारी का बिगुल बज उठा ।

लेकिन सैनिक अपने खेमों में से नहीं निकले ।

अलिक-सुन्दर गर्ज उठा—

"सेल्यूकस ! इसकी वजूहात क्या है ?"

"आलीजहा ! सिपाही अब इस खून खराबी से तंग आकर वतन को लौटना चाहते हैं ।"

" और हमारी ख्वाहिश...थोड़ी देर सोच कर...नही हम आगे बढेंगे... इन्हे हमारा साथ देना होगा !"

" साथ देने के लिए तैयार है वे लोग जहांपनाह ! लेकिन कुछ दिनों आराम चाहते हैं ।

"सेल्यूक्स—" चीख उठा मेसिडान का बादशाह अलिक-सुन्दर "हम यहां पर आराम के लिए नही आये हैं । हमें अभी कूच करना होगा । हम आराम जैसी छोटी सी चीज़ के लिए फतेह की कामयावी को पीछे नहीं ढ़केल सकते ।"

सेल्यूकस ने अलिक सुन्दर के तमतमाते हुए चेहरे को देखा । वह अपने डेरे में चहल कदमी कर रहा था । उसका दाया हाथ बारम्बार कमर में लटकती हुई तलवार पर पड़ रहा था । उसकी आंखे चिंगारियां बरसा रही थीं । थोड़ी देर चुप रहने के उपरान्त उसने पूछा— ।

"किस ओर को बढ़ा जाये ?"

सिकन्दर ने सेल्यूकस के शब्दों को सुना और फिर पास में रखे हुए मानचित्र को देख कर बोला –

"व्यास नदी को पार करके मगध की ओर बढ़ो ।"

"महाराज ! मगध का शासक पौरव से भी अधिक शक्तिशाली है । अपनी फोज में इतनी ताकत नहीं कि वह उसकी विशाल सेना का मुकाबला कर सके ।"

"सेल्यूक्स ! अलिक सुन्दर को अपने पर एतवार है, इसलिए वह बिना सहारे ही आगे वढ़ेगा ।"

"महाराज ! आप ऐसा न सोचें । हम आपके साथ हैं । लेकिन ।

"लेकिन क्या सेल्यूक्स ।"

"महाराज ! ये सब सेनानी आपके इशारे पर नाचने के लिए

हमेशा तैयार रहे हैं । इन्होंने आपकी बजह की खातिर अपने मुल्क और बच्चों को छोड़ कर यहा की खाक छान रहे हैं । अब अपका भी फर्ज है कि कुछ इनके आराम की सोचें ।

"सेल्यूक्स ।"

"महाराज मैं ठीक कह रहा हू । अब आगे बढने के ख्याल को छोड़ दीजिएगा ।"

"क्या अलिक-सुन्दर को अपनी ख्वाइशों को कुचलना होगा ?"

"हजूर वक्त की ओर देखे ।"

"जैसी तुम्हारी मरजी—,, इतना कह कर अलिक-सुन्दर कटे वृक्ष के समान शैया पर गिर पड़ा ।

सेल्यूकस आदेश को पाकर उस स्थान पर पहुँचा । जहाँ पर सिपाही उसका बेताबी के साथ इन्तजार कर रहे थे । उसकी तजुरबे कार आँखो ने उनके दिली जजबातो को पढा । तभी उसके मुख से निकला

"अब जल्दी ही आप लोग अपने वतन को पहुँच जाएँगे ।"

इन शब्दो ने मुर्दो मे जान डाल दी । मुरझाए हुए चेहरे उसी प्रकार से खिल पड़े, जिस प्रकार से कमल सूर्य की प्रथम किरण में समेटने के लिए अपनी कोमल पंखुड़ियों को खोल देता है ।

खुशी का आलम छा गया । जशन मनाए जाने लगे । ईरानी तरानों से सारा वातावरण गूज उठा । अलिक-सुन्दर ने उन खुशी के तरानों को सुना । उससे धधकती हुई अग्नि की लपटें शांत सी हो गई ।

उसने पुन: सेल्युकस को बुला कर बारह पाषाण स्तम्भ अपनी विजय की सूचना के हेतु लगवाने का आदेश दिया ।

आदेश का पालन हुआ । उसने अभिसार को हजारा का शासक नियुक्त किया, तक्षशिला नरेश को झेलम और सिन्ध नदियों के मध्य का प्रदेश मिल्म और पौरव को झेलम और व्यास नदियों के बीच के प्रदेश शासन के लिए मिले । इस प्रकार अलिक-सुन्दर भारतीय नरेशों से राजनीतिक मेल करके दूसरे रास्ते से अपने देश को लौटा ।

अलिक-सुन्दर के लिए बिलोचिस्तान का रास्ता बहुत कठिन था। परन्तु उसने उसी ओर जाना मन्जूर किया। इस दूर्गम और लम्बे रास्ते में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसके सहस्त्र प्यास को सहन न कर सके और सदा के लिए वही पर सो गए।

इस पर भी अलिक-सुन्दर के शक्तिशाली कदम बड़ते ही गए। अनेक शत्रुओं ने उसे मार्ग में तंग किया। भारतीय लूटे हुए सामान को जला डाला गया।

अनेक दु:खों ने उसे परेशान कर डाला। उसके मष्तिष्क ने सोचने का कार्य बन्द कर दिया। उसे चारों ओर ही अन्धकार सा दिखाई देने लगा।

उसके हृदय की शान्ति कभी की उढ़ गई थी। उसकी सेना आक्रमण और प्यास से परेशान थी। इस पर भी वह विक्षिप्तावस्था में आगे वढ़ना चाहता था परन्तु......

ऊपर से फ़ौज के क्रन्दनों ने उसको बिल्कुल ही निढाल कर दिया।

उसके शरीर ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया।

वह तीन दिन तक मार्ग मे ही विक्षप्तावस्था मे पड़ा रहा।

और एक दिन संध्या के समय मेडीसन का बादशाह अलिक सुन्दर अपनी आकाक्षाओं को आलिंगन किए हुए सदैव के लिए मृत्यु की गोद में सो गया।

२२

★★★

"गुरुदेव !

"कहो वत्स ।"

"राजनीतिक संगठन कैसा चल रहा है ?"

"अब चिन्ता मत करो वत्स ! जो कार्य मेरी वाणी न कर सकी थी वह कार्य यवनो का आक्रमण कर गया । सप्तसिन्धु के पद्द-लित होने से इन्हे चेतना आ गई है । अब वह सब समझने लगे है कि जब तक सब मिल कर एक राज्य को स्थापित नहीं करेंगे तब,तक उत्तर पश्चिमीय भारत का कल्याण नहीं हो सकेगा । "

"क्या सब इस के लिए उद्यत है ? "

"केवल आभि को छोड़ कर..."

"वह क्या कहता है ? "

"वह अनेक समझाने पर भी अपनी जिद नहीं छोड़ता है । मैंने उसको पौरव की ओर से स्वतन्त्र राजा मानने की भी बात कही थी; लेकिन वह देशद्रोही किसी मूल्य... "

"इसके बारे में आपका तथा अन्यों का क्या परामर्श है गुरूदेव ?',

"इस कांटे को हटाना होगा । "

"किस प्रकार से ? "

"आक्रमण से ।"

"कब ? "

"यथा शीघ्र । "

यूडेमस इस अवसर की ताक में था... उसने उस वीर का उसी अवस्था मे खड्ग से वध कर दिया और स्वय अपने साथियों सहित मेसिडान की ओर भाग गया ।

अगले दिन चन्द्र गुप्त को इस दुखद समाचार का पता लगा तो उसे बहुत दुःख हुआ । उसने पौरव का अंतिम संस्कार किया और १३ दिन तक शोक भवन मे पडा रहा ।

अन्त मे चाणक्य के कहने पर सारे राज्य की बागडोर उसे सम्भालनी पड़ी ।

२३

★★★

"महाराज ! अब यवन वापिस जा चुके है... मेरा यह जीर्ण शरीर कुछ दिनो का अवकाश मांगता है ।"

"महर्षि कात्यायन जैसा आप उचित समझें करें ! लेकिन..."

"लेकिन क्या महाराज ?"

"पाटलिपुत्र पर काली घटाये छाइ हुई हैं... उनके दूर होने पर ही अवकाश मांगते तो अच्छा था ।"

"महा सेनापति भद्रशाल स्थिति को सम्भाल लेंगे महाराज ।"

"मुझे ऐसा असम्भव सा प्रतीत हो रहा है... सेना में कुछ विद्रोह की भावना जागृत हो गई है ।"

"यह चिन्ता का विषय नही है महाराज ।

"आप कहां जाना चाहते हैं ?"

"काश्मीर ।"

"कितने दिन विश्राम कीजिएगा ?"

"दो वर्ष ।"

"जैसी आप की इच्छा ।"

राजाज्ञा पाकर कात्यायन जी कश्मीर के लिए प्रस्थान कर गये ।

नगर की सुरक्षा का भार भद्रशाल ने सम्भाला । परन्तु धननन्द के कुटिल व्यवहारों से पीड़ित जनता को अपनी ओर मिलाने मे असमर्थ रहा

पाटलिपुत्र अराजकता का केन्द्र बन गया । नवनद नरेश भावी आशंका से घबरा उठे...परन्तु प्रजा में शांति चिन्हों को स्थापित न कर सके ।

ऐसी अशान्त परिस्थितियों में चन्द्रगुप्त मौर्य ने शकटार, चाणक्य और विशाल गुप्त की संरक्षकता में एक विशाल सेना के साथ नव नंद वंश पर आक्रमण किया ।

महा सेनापति भद्रशाल ने एक विशाल सेना के साथ घोर मुकाबला किया ।

पन्द्रह दिवस तक घमासान युद्ध चलता रहा ।

नवनन्द वंश की एक तिहाई सेना मौर्य कुमार से जा मिली ।

इस पर भी भद्रशाल ने साहस न छोड़ा ।

उसने अपने रणचातुर्य से विशालगुप्त और भूतपूर्व महामात्य शकटार को मृत्यु की गोद में सुला दिया ।

दोनों महान आत्माओं की मृत्यु के समाचार से चन्द्रगुप्त का हृदय विदीर्ण हो उठा ।

उस दिन के लिए युद्ध बन्द कर दिया गया ।

दोनों सेनाएँ अपने २ स्थानों पर विश्राम के लिए पहुँच गईं ।

चन्द्रगुप्त अपने डेरे में बच्चों के समान फूट-फूट कर रोने लगे ।

तभी चाणक्य ने प्रवेश करके कहा—

"वत्स ! यह अश्रु उन आत्माओं को नही जगा सकते है... फिर अब इनका बहाना व्यर्थ है । उठ ! और लक्ष्य की ओर झुक... ऐसा अवसर बारम्बार नही आया करता ।"

गुरुदेव के बचनों ने चन्द्रगुप्त के हृदय में ओजता का संचार कर दिया ।

अर्ध रात्रि में ही युद्ध का बिगुल बज उठा ।

नव-नन्द वंश की थकी हुई सेना इस आक्रमण का मुकाबला न कर सकी । वह बड़ी वीरता से पीछे की ओर हटती गई ।

चन्द्रगुप्त ने आगे बढ कर पाटलि-पुत्र के दुर्ग को घेर लिया । वहाँ पर भी लगभग १५ दिवस तक युद्ध चलता रहा ।

परन्तु दुर्ग के द्वार न खुल सके ।

धननन्द को हार का भय निश्चित सा होने लगा तो उसने सन्धि-विग्राहिक द्वारा चन्द्रगुप्त से संधि का प्रस्ताव किया ।

दोनों ओर से संधि के ऊपर विचार वि.नेमय होने लगे ।

अन्त मे चन्द्रगुप्त इन शर्तो पर तैयार हुआ कि सम्राट् धननन्द अपनी साम्राज्ञी और आवश्यकतानुसार निष्क और स्वर्णादि लेकर राजप्रसाद से चले जाएँ और पाटतिपुत्र के बाहर किसी बन मे जाकर विश्राम करें ।

शर्त्तें स्वीकृत हो गईं ।

राजप्रसाद का विशाल द्वार खुला...

चन्द्रगुप्त की सेना ने मार्ग छोड़ दिया ।

महाराज धननन्द अपनी साम्राज्ञी और सेवकों के साथ बन की ओर चले गए ।

नव-नन्द वंश के बहुत से पदाधिकारी जिन्होंने चन्द्रगुप्त की सेवा करने की शपथ ली; उन्हे उन्हीं पदों पर सुशोभित रहने दिया और शेष को प्रथक कर दिया गया ।

चन्द्रगुप्त मौनी तपस्वी जटलिन पर शांति स्थापित करने का भार छोड़ कर अपने शिविरों को वापस लौट आए ।

कुछ अपने स्वामी भक्त सेवकों को नगर की रक्षार्थ वहीं छोड़ दिया गया । पितृ वियोग के कारण मौर्य-कुमार ने १३ दिवस तक राजप्रसाद मे प्रवेश न करके शिविरों में ही वास किया ।

मौर्य नरेश और आर्य शकटार का विधिवत संस्कार किया गया।

चाणक्य पाटलि-पुत्र की राजनीतिक अवस्था की गतिविधि का

निरीक्षण करने के लिए नगर में आगए ।

साम्राज्ञी दुर्धरा ने अपने पवित्र स्नेह से मौर्य-कुमार की वेदना को दूर करने का प्रयत्न किया और वे सफल भी हुई ।

२४

***

"मौनी तपस्वी ! राजधानी की अराजकता का क्या हाल है ?" चाणक्य ने जटलिन से नगर की परिस्थितियों को जानने के अभिप्राय: से पूछा ।

"आर्य पुरुष ! यहां की अराजकता तो पूर्णतया समाप्त हो चुकी है ।"

"क्या अब पूर्ण जनता चन्द्रगुप्त को सच्चा स्नेह और सहयोग देने के लिए उद्यत है ?"

"हाँ आर्य पुरुष...लेकिन धननन्द की धूर्तता पर अवश्य ध्यान रखना पड़ेगा ।"

"क्या कुछ ऐसा आभास हुआ है ?"

"उसकी प्रकृति ही ऐसी है आर्य ! वह किसी न किसी प्रपँच से इन्हें मार कर पुन: राज्य प्राप्ति की योजना बनाएगा ?"

"अच्छा ! अब मैं वत्स चन्द्रगप्त के पास जाता हूँ । आप यहा का विशेष ध्यान रखें ।"

"जो आज्ञा आर्य ।"

चाणक्य यथाशीघ्र ही चन्द्रगुप्त के शिविर पर पहुँचे और द्वारपाल से सूचना देने के लिए कहा ।

द्वारपाल गुरुदेव का आदेश पाते ही सूचना देने के लिए गया ।

"श्रीमन् ।"

"क्या है अवन्तक ?"

"गुरुदेव बाहर पधारे हुए हैं ।"

इतना सुनते ही चन्द्रगुप्त बाहर की ओर दौड़े और यथाविधि प्रणाम करके बोले ।

· "गुरुदेव आप कक्ष में ही क्यों न आगए ? जो यहाँ ठहर कर कष्ट सहन किया ।"

"वत्स ! इस जीर्णकाय को अब कष्ट किस बात का ?"

तभी दोनों ने कक्ष के अन्दर प्रवेश किया ।

सम्राज्ञी दुर्धरा ने गुरुदेव के चरण छुए ।

"पुत्रवती हो ।"

चाणक्य के मुख से आर्शीवाद निकला ।

गुरुदेव के आसन पर सुशोभित होने के उपरान्त वे दोनो भी यथा स्थान पर बैठ गये ।

"वत्स ! राज-प्रासाद में कब प्रवेश करना चाहते हो ?"

"जब गुरुआज्ञा हो ।"

"मेरे विचार में तो मंगलवार का मुहूर्त शुभ रहेगा ।"

" इस के लिए तो आप ही ठीक समझ सकते हैं गुरुदेव ।"

"अच्छा ! तुम सम्राज्ञी दुर्धरा के साथ राजप्रासाद प्रवेश की पूर्ण तैयारी करो । मैं राजप्रासाद की पूर्ण रूप से सफ़ाई कराता हूँ ।"

"सफाई तो हो चुकी है गुरुदेव ।"

"मैं वैसी सफाई में विश्वास नहीं करता हूँ ।"

"क्या कोई विशेष सन्देह ?"

"वैसे तो नही...लेकिन..."

"लेकिन क्या गुरुदेव ?"

"धननन्द ने कोई प्रपच न रच रखा हो ।

"कैसा प्रपंच ?"

"पुनः राज्य प्राप्ति का ।"

"यह तो मेरी जीवितावस्था में अत्यन्त कठिन है ।"

"तो इस के लिए वह बध का प्रबन्ध कर सकता है ।"

"क्या वह एसा करेंगे ?"

"जब उस नीच के पिता ने विद्वान ब्राह्मण चणक का वध करने में किसी बात का संकोच नहीं किया था तो फिर इसे कैसा ?"

"फिर अब मुझे क्या करना है ?"

"अभी समय है ! मैं राजप्रासाद की सफाई कराता हूँ...तुम यथा समय प्रवेश हेतु वहाँ पहुँच जाना ।"

"जो आज्ञा ।"

इतना कह कर चाणक्य अपने कार्य को पूर्ण करने के हेतु राजधानी की ओर चले गये ।

२५

★★★

"विश्वकर्मा ।"

"आज्ञा देव ।"

"राजप्रासाद मे आज चन्द्रगुप्त ने साम्राज्ञी दुर्धरा के साथ प्रवेश करने का विचार किया है... उनके शुभागमन से पूर्व ही राजप्रासाद की पुनः जांच पडताल हो जानी चाहिए ।"

"मैं इस आज्ञा को अभी पूर्ण कराता हूँ आप भी एक बार सारे प्रासाद का यथा विधि निरीक्षण करलें ।"

सफाई आरम्भ हो गई...

सेवक इधर से उधर दौड़ने लगे ।

चाणक्य ने एक एक कक्ष में प्रवेश करके देखा ।

पर उन्हें सन्देह की कोई वस्तु दिखाई न दी ?

प्रत्येक कक्ष के कोने देखे जाने लगे ।

चाणक्य ने विशेष कर उस कक्ष का निरीक्षण किया जो कि सम्राट् और सम्राज्ञी के शयन के लिए निर्वाचित किया गया था ।

उसके एक एक कोने को ध्यान पूर्वक देखा गया ।

तभी सहसा चाणक्य ने देखा...

एक कोने में से चीटियों का झुण्ड चावल के कणों को लेकर जा रहा है ।

"यहां चीटिया कहा से ?" उनके मुख से निकला—"विश्वकर्मा—।"

विश्वकर्मा आवाज को सुन कर उपस्थित हुआ ।

"देखो विश्वकर्मा ! यह चीटियां इस बात को सूचित करती है कि अब भी इस प्रासाद मे प्राणियो का निवास है... "

"प्राणियों का निवास..." आश्चर्य के साथ विश्वकर्मा ने दोहराया ।

"मेरा सन्देह सत्य है विश्वकर्मा ।"

पुनः खोज आरम्भ हुई ।

उस शयन कक्ष के समीप ही एक विशाल तलधर का पता लगा ।

उसमें १५ सशस्त्र वीर जीवित अवस्था मे पाये गये ।

"बन्दी किये जायें—" चाणक्य ने आदेश दिया ।

वे वीर वन्दी बना लिए गये ।

"तुम्हारा नेता—" चाणक्य ने पूछा ।

"अवन्त—" उन्होंने उत्तर दिया ।

"राजच्युत धननन्द का विश्वास पात्र सेवक अवन्त..." चाणक्य क्रोध से पागल हो उठे..." वह नीच ! अपनी आदत से बाज़ नहीं आता— तभी आज्ञा दी...इन्हें कारागार में डाल दो "।

राजप्रासाद के प्रवेश का शुभ समय आ गया ।

बड़ी धूमधाम के साथ सम्राट् और सम्राज्ञी के हस्ती ने राजधानी में प्रवेश किया ।

प्रजा ने उन दोनों का भव्य स्वागत किया और उनकी जय जयकार मुक्त कण्ठ से की ।

यह विशाल सवारी राजधानी की विशाल वीथिकाओं से होती हुई राजप्रासाद के प्रमुख द्वार पर पहुँची ।

गुरुदेव चाणक्य आवश्यक सामान के साथ द्वार पर स्वागत हेतु पहले ही खड़े हुए थे ।

दोनो ने हस्ती से उतर कर गुरुदेव के चरणस्पर्श किए ।

चाणक्य ने मुक्त कण्ठ से इस युगल जोडी को आर्शीवाद दिया ।

सम्राट्र चन्द्रगुप्त ने अपनी सम्राज्ञी, सामन्तो, विश्वासपात्र सेवकों और गुरुदेव चाणक्य के साथ राजप्रासाद में प्रवेश किया ।

सारा प्रासाद सजावट से जगमगा रहा था ।

राजप्रासाद के बाहर विजय और उल्लास के बाजे बज रहे थे ।

रात्रि में सारे नगर मे रोशनी का प्रबन्ध था ।

सब को उपहार बांटे गए ।

सब लोग प्रसन्न मुद्रा में अपने २ स्थानों को लौटे ।

अवसर पाकर गुरुदेव चाणक्य ने सम्राट्र चन्द्रगुप्त को उन छिपे हुए व्यक्तियों के बारे मे पूर्ण हाल बतला दिया ।

उस सूचना को सुन कर सम्राट्र व सम्राज्ञी दोनों दंग रह गए ।

और इतना कह कर चाणक्य वहां से प्रस्थान कर गए ।

२६
★★★

पाटलिपुत्र का राजदरबार सजाया गया ।

सम्राट् चन्द्रगुप्त राजसी पोषाक में सम्राज्ञी दुर्धरा के साथ सिंहासन पर आसीन हुए ।

सम्राट् के अनुरोध पर महामात्य के पद को चाणक्य ने सुशोभित किया ।

अन्य सभासद अपने २ स्थानो पर विराजमान हुए ।

तभी एक सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी ने नर्तकी की पोषाक मे राज दरबार में प्रवेश किया ।

उसने राजसी अभिवादन के उपरान्त नृत्य और सगीत आरम्भ किया ।

उसकी स्वर लहरी झंकरित ही उठी ।

सारे सभासद विमुग्ध हो उठे ।

सम्राट् चन्द्रगुप्त उसके रूप लावण्य को ही देखते रह गए ।

गीत उसके अधरों से मुखरित हो उठा—

तू किसे याद कर जलता है ?
जलने में कह क्या मिलता है ?

क्या याद किसी की आती है ?
जो उर में आग लगाती है ॥
मत व्याकुल हो, जो होना है ।
सो तो होकर ही रहता है ॥

तू किसे याद कर जलता है ?
जलने में कह क्या मिलता है ?

यदि सत्य प्रेम तेरा होगा ।
तू उसका, वह तेरा होगा ।।
लौ लगी स्नेह, यदि ऐसी ही।
तो इष्ट तुझे मिल सकता है ।।

तू किसे याद कर जलता है ?
जलने मे कह क्या मिलता है ?

गिरता है जब पतग तुझ पर ।
कहता—"जलता हूँ मै तुझ पर;"
यह सत्य तो है लेकिन पहले ।
उससे तू ही तो जलता है ।।

तू किसे याद कर जलता है ?
जलने में कह क्या मिलता है ?

नर्तकी का स्वर सारे दरबार मे गूँज उठा ।

पायलों की झन्कार और उसकी मादक आँखों ने सब को मोह लिया।

साम्राज्ञी दुर्धरा स्वयं उसके स्वर और लावण्य को चित्रित सी देखती रह गईं ।

सहसा थिरकते हुए कदम रुक गए ।

वाह-वाह और तालियो की आवाज से दरबार गूँज उठा ।

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने उसकी कला के उपहार में एक रत्नजड़ित हार भेंट किया ।

उस हार से विभूषित होने पर उसका सौन्दर्य द्विगुणित हो उठा । नर्तकी अभिवादन के पश्चात अपने गन्तव्य स्थान की ओर चली गई । मनोरन्जन का कार्यक्रम चलता रहा ।

सन्ध्या के समय दरबार विसर्जित किया गया ।

सब सभासद उल्लास में डूबे हुए अपने-अपने घरों को चल दिए। साम्राज्ञी दुर्धरा सखियों के साथ कानन बिहार के लिए चली गईं ।

सम्राट् चन्द्रगुप्त अपने शयन कक्ष की ओर चल दिए ।

उन्होने वहाँ पहुंच कर देखा कि एक रूप सुन्दरी उनकी राह देख रही है । वह आश्चर्य मे रह गए ओर उनके मुख से निकला—

"तुम यहाँ क्यों आई हो सुन्दरी ?"

"महाराज ! आजकी रात आपके सहवास में काटना चाहती हूँ ।"

"सुन्दरी ऐसा होना असम्भव है । मैं इन्द्रियजित हूँ ।"

"क्या आप मेरी आकाँक्षाओ को ठुकरा देंगे ? उसने आगे बढते हुए कहा ।"

"मेरे समीप आने का प्रयास मत करो सुन्दरी ।"

लेकिन वह बड़ती ही गई ।

"सावधान सुन्दरी..."

लेकिन सम्राट् की आवाज उसे न रोक सकी ।

अन्त मे उन्होने आवाज दी ।

"इसे बन्दी करके आर्य चाणक्य के सन्मुख उपस्थित करो ।"

सेवक ने राजाज्ञा का पालन किया ।

चाणक्य इस समाचार को सुन कर शंकित हो उठे ।

उन्होने कुटिया से बाहर निकल कर उस सुन्दरी से पूछा ।

"बेटी ! तुम सत्य बतलादो कि तुम कौन हो और शयन-कक्ष में तुम्हे पहुँचाने वाला कौन है ?"

सुन्दरी आर्य चाणक्य की आँख में धूल न झोंक सकी । उसने परिचय देते हुए कहा—

"आर्य ! मैं नवनन्द राज्य द्वारा गुप्तरूपेण पालित विषकन्या हूँ । मेरे सहवांस मात्र से मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।"

"विष-कन्या ! तुम सम्राट् के पास क्यों गइँ थीं ?"

"मेरे स्वामी का ऐसा ही आदेश था ।"

"कौन स्वामी ?"

"सम्राट् धननन्द !"

"बस-बस उस पापी का नाम मेरे सन्मुख मत लो—" चार्णक्य चीख उठे... "इसे और इसके साथियो को कारागार मे डाल दो.।" आज्ञा का पालन हुआ ।

यही समाचार चाणक्य ने स्वयं सम्राट् के पास पहुँचाया ।

सम्राट् चन्द्रगप्त धननन्द के इन दो कुकृत्यो से बडे दुःखी हुए और उनकी बुद्धि के सुधार के उपाय सोचने लगे ।

२७

★★★

"क्या मेरे प्रणय बन्धन स्वीकार है देवी ?"

"असम्भव । अब आप प्रणय के सूत्र दुर्धरा के साथ ही जोड़िए । क्या आप उस सौन्दर्य की प्रतिमा के स्नेह से भी सन्तुष्ट नही ?"

"ऐसी प्रियतमा पा कर भला कौन असन्तुष्ट रह सकता है देवी ?"

"फिर..."

"मुझे सर्वदा एक बात खाये जाती है ।"

"ऐसी कौन सी बात है जो भारत सम्राट्र को दुःखी किए हुए है ?"

"मूर्खता वश एक कलि को कुचल डालना ।"

"उसे भूल जाओ सम्राट्र ! कुचली हुई वस्तु कभी सजीव नहीं हो सकती है । फिर आपने तो उस कलि को कुचल कर ऐसे मार्ग का दिग्द-र्शन करा दिया है, जिस पर चल कर वह जगत के साथ २ अपने कौटुम्बिक पापों का भी प्रायश्चित कर सकती है ।"

"मैं प्रायश्चित किए बिना उसे नहीं भुला सकता हूँ देवी... और मेरा प्रायश्चित उसको प्रणय बन्धन में बाँध कर ही हो सकता है ।"

"विवाहित हो ! अब आपको ऐसे शब्द शोभा नहीं देते हैं ।"

"भूल करती हो देवी ! क्षत्रिय सम्राट् धर्म शास्त्रों के अनुसार एक से अधिक विवाह कर सकता है ।"

"सम्राट् आपकी यह इच्छा भी पूर्ण हो चुकी है । आपको इस समय भी दो सुन्दरियां प्रणयी के रूप में मिली हैं।"

"यह तो सत्य है पाषाणी ! लेकिन मेरी अंतिम आकांक्षा की पूर्ति करके मेरी उर की पीड़ा को शान्त करो ।"

"देव ! समाज में मेरा मुख काला करने का प्रयत्न न कीजिए ।"

"अच्छा तो आज इस विषय को यहीं पर छोड़ता हूँ, फिर कभी समझाने का प्रयत्न करूँगा ।"

थोड़ी देर तक शान्ति रही ।

सुनन्दा जाने का उपक्रम करने लगी ।

तभी चन्द्रगुप्त ने कहा—"देवी ! आपके पिता ने मेरे बध के लिए दो बार प्रयत्न किया है । इस पर तथा अपमान स्वरूप आर्य चाणक्य उनसे रुष्ट हैं ।"

"इसका मुझे हार्दिक दुःख है ।"

"युद्ध में उनके द्वारा आर्य शकटार और मेरे पूज्य पिता जी का वध हुआ ! इस पर भी उनके प्राणों की रक्षा कर रहा हूं : लेकिन वे अपनी आदत... यदि ऐसा ही रहा तो मैं राजनीतिक दांव पेचों से उनकी रक्षा न कर सकूंगा देवी ।"

"मैं इस योगिनी अवस्था में इन राजनीतिक विषयों में बिल्कुल भी नहीं पड़ना चाहती हूँ ।"

"देवी ! पिता को एक बार समझा दीजिएगा ।"

"प्रयत्न करूंगी ।"

"अवश्य ।"

"आप स्वयं ही निर्णय क्यों नहीं कर लेते ?"

"देवी ! सम्राट् मेरा शत्रु था...मैंने उससे निर्णय कर लिया;

लेकिन धननन्द मेरे शत्रु नहीं है । इसलिए यह कार्य आपको सौंप रहा हूँ ।"
"ऐसा क्यों ?"
"देवी ! क्षत्रिय अपना निर्णय खड्गो की छाया में किया करते है, बातो से नही ।"
"मैं वैसे मिलना नहीं चाहती थी, लेकिन अब आपके कारण मिलना पड़ेगा !"
"महती कृपा होगी ।"
"अच्छा अब मै जाती हूँ सम्राट् अवसर मिलने पर फिर दर्शन करुँगी ।"
"मेरी पलकें सदैव आपकी राह मे बिछी रहेगी ।"
दोनों पुलकित हो उठे ।
और कक्ष में अट्टहास गूंज कर रह गया ।

२८
★★★

चिता जल रही है ।
शोकातुर धननन्द ! लौ की अंतिम ज्योति में खड़े हुए अपनी साथिन को विदा दे रहे हैं ।
उनका हृदय विदीर्ण हो उठा ।
उनकी क्रूर आंखों में अश्रु छल छला आये ।
उनकी पैशाचिक प्रवृति द्रवित हो उठी ।
उनके पैरों में कम्पन सी पैदा हो गई ।
वे वहीं पर बैठ गये ।
तभी उनका वेदना से भरा स्वर निकला ।
"देवी ! आज तक अपना सब कुछ खो कर तेरे ही सहारे जीवन

की इन घड़ियों को गिन रहा था । तू भी इन दुःखों में धोखा देकर चली गई । तेरी प्यारी बेटी । न जाने कहां भटक रही होगी ? अब मेरा. इस दुनिया मे कौन है ? बोल ! बोलती क्यो नही ?"

उनका क्रन्दन सुन कर उनके राजभक्त सेवक द्रवित हो उठे ।

सहसा धननन्द के पैरों में शक्ति का संचार हुआ ।

वे खड़े हो गये ।

उनका मलिन मुख क्रोध से तमतमा उठा ।

वे क्रोधावेश मे बोले ।

"चन्द्र ! तूने ही मेरे परिवार को पृथक किया है । तूने ही मेरी सुकुमार बच्ची के कोमल उर को कुचला है । तूने ही हमे असीम पीड़ा देकर सम्राज्ञी को आकस्मिक मृत्यु का आलिंगन करने के लिए विवश किया है । अब तू ही मेरा घोर शत्रु हे ।"

"कौन शत्रु है पिताजी ?"

स्वामी भक्त सेवकों ने देखा ।

राजकुमारी सुनन्दा योगिनी के वेश में...

"कौन ? सुनन्दा ! मेरी प्यारी बच्ची–" यह कह कर धननन्द ने हर्ष से उसे गले लगा लिया ।

"यह किस की चिता है पिता जी ?"

"तुम्हारी स्नेहमयी माता की ।"

"क्या ! माता जी मुझ से बिना मिले ही चली गई ?"— सुनन्दा वेदना से पीड़ित हो कर बोली ।

"जाने वाली चली गई बेटी—" अब अश्रु बहाने से क्या लाभ ?"

"सत्य है पिता जी ! यह क्रन्दन मात्र तो ससार का ढकोसला है ।"

"ठीक कहती हो बेटी ! महर्षि कात्यायन ! दो वर्ष के लिए क्या

गये । मेरा तो सब ही कुछ बदल गया ।"

"पिता जी ! अब इस मन की चंचलता पर विजय प्राप्त कीजिए... इस के लिए अमोध शास्त्र है वैराग्य ।"

"पर मेरे से वैराग्य पालन नही हो सकता ।"

"क्यों ?"

"मुझे अभी प्रतिशोध लेना है बच्ची ।"

"प्रतिशोध ! किस से प्रतिशोध लेगे पिता जी ?"

"चन्द्रगुप्त से..."

"उन्होंने आपका क्या बिगाड़ा है ।"

"मेरा ही नही उसने मेरी बच्ची के सुखों का भी अन्त कर डाला है ।"

"यह मिथ्या है पिता जी । वे तो अब भी विवाहार्थ शतश. प्रार्थनाएँ कर चुके हैं ; किन्तु मैं अब ईश की शरण को छोड़ कर मानवी शरण में नही जाना चाहती हूँ ।"

"वह तुझ से तो स्नेह करता है; लेकिन मेरी जड़ो को समूल नष्ट करना चाहता है ।"

"पिता जी ! वे ऐसा न करके अभी तक आप की रक्षा ही कर रहे हैं; लेकिन आप ने दो बार अवश्य उनके बध का प्रयत्न किया है ।"

"वे मेरे प्रयत्न नहीं ,अपितु मेरे किसी भक्त सेवक के हो सकते हैं बेटी ।"

"चाहे वे किसी के हों ? लेकिन नाम आपका ही बदनाम होगा ।"

"यह ठीक है बेटी !"

"पिता जी ! अब मेरी यही प्रार्थना है कि आप इन राजनीतिक झंझटों को छोड़ कर सुख और शान्ति से जीवन यापन करें ।"

"अच्छा बेटी ! यह सब तो हो जायेगा ; लेकिन मेरी भी अब एक इच्छा है ।"

"वह क्या पिताजी ? "

"तू चन्द्र से विवाह करले । "

"पिताजी खेद है कि मै इस इच्छा को पूर्ण नही कर पा रही हूं ।"

"क्यों ?"

"लोकलाज कारण ।"

"जैसी तेरी इच्छा ।"

इसके उपरान्त दोनो पिता पुत्री शयन कक्ष की ओर विश्राम के लिए चले गये ।

लेकिन धननन्द की आखो से नींद कोसो दूर थी ।'*

आज वे एक को खोकर दूसरे को पागये थे ।

उनका हृदय खुशी से पुलकित था ।

लेकिन कभी २ एक काटा उनके उर मे आकर चुभ जाता था । वे उस हृदय के काटे को निकालने के लिए बारम्बार युक्ति सोच रहे थे ।

सहसा नेत्र बोझिल हो उठे ।

और फिर वे

स्वप्ननिद्रा मे लीन हो गए ।

२६

***

"प्राणेश्वरी ! चन्द्र तुम्हारी प्रणीय लीला को देख कर मुस्करा रहा है ।"

"यह झूठ है नाथ ! वह तो आपके स्वार्थ पर हँस रहा है ।" साम्राज्ञी दुर्धरा ने चन्द्र से छूटते हुए कहा ।

"मेरा स्वार्थ ! यह तुम क्या कह रही हो ?"

"मैं ठीक कह रही हूँ । आपने अपने इस स्वार्थ के पीछे भद्रत्व को त्याग दिया ।"

"बहुत ठीक ! पूडे खाकर गुलगुलो से परहेज दिखा रही हो । जी में तो स्वयं के था और दोषापरण मुझ पर किया जा रहा है ।" इतना कह कर चन्द्रगुप्त ने उसे आलिगन मे वद्ध कर लिया ।

"छोड़ो भी ! कोई देख लेगा ।"

"फिर क्या कर लेगा ?"

"इतना प्रभुत्व ।"

दोनो खिलखिला उठे ।

चन्द्र लजा कर बादलों की ओट में हो गया ।

तभी सम्राट् ने कहा—

"देखो उसे भी लज्जा आगई है । अब तो कुछ सुना दो वीणा के तारों में..."

"आज सुनने के लिए बहुत बेचैन हैं क्या ?"

"यदि कृपा हो जाए..."

"अच्छा मैं वाद्य प्रसाधन मंगाती हूँ ।"

इतना कह कर उसने सेविका को संकेत किया जोकि दूरी पर खड़ी हुई थी । वह संकेत पाकर आगे बढी ।

आज्ञा मिली—
"वीणा ले आओ ।"
आज्ञा का तुरन्त पालन किया गया ।
बीणा के तार झंकृत हो उठे ।

सम्राट् बेसुध से उपवन में संगमरमर के चबूतरे पर बैठ गए
साम्राज्ञी दुर्धरा वीणा मे लीन हो गईं ।
उनके सुन्दर कपोल रक्त से रन्जित हो उठे ।
तभी मृदुल स्वर-लहरी फूट पडी ।
जल थल के पक्षियों ने ध्यान से सुना
और वे सब उसी आनन्द में खो गए;

भूलो भूलो हे निर्मोही'
मेरा अनुपम प्रेम महान ।
भूल सकते हो तो भूलो;
हृदय का आदान प्रदान ॥

भूलो वे मधुमय घड़ियाँ,
वे सुहाग की मृदु लड़ियां ।
अहो हृदयधन ! भूलो-भूलो,
मानस की प्यासी घड़ियाँ ॥

वह आवेश चाहती करुणा,
जीवन के मृदु प्रहरों में ।
अरे ! डुबो दो, मत रहने दो,
स्मृति की गहरी लहरों में ॥

किसी भूले सपने की भाँति,
कभी वे यदि आवें याद ?
उन मुरझे मुकुलों के द्वारा;
तभी कर देना बरबाद ॥

भूलो-भूलो हे निर्मोही ।

"अति सुन्दर..." सम्राट् बोल उठे ।

वीणा पर थिरकतीं हुई कोमल उँगलिया रुक गईं और गीत-सुन्दरी दुर्धरा चन्द्र के बाहुपाशों में सिमट कर रह गई ।

"प्रिय ! आज बहुत पुलकित हो ।"

"मेरे जीवन की साध जो आज पूर्ण है ।"

"वह कैसे ?"

"आप जो मेरे साथ हैं ।"

"मैं तो हमेशा ही रहा हूँ ।"

"तब उलझे रहते थे ।"

"किस में ?"

"राजनीति की चालों में ।"

"और अब..."

"मेरे स्नेह बन्धनों में ।"

"क्या ही सच्चा अनुराग है प्रिय ?"

"विश्व तो इसी को मानता आया है नाथ ।"

"देखो ! राजकुमारी सुनन्दा ने सर्व गुण सम्पन्ना होते हुए भी इस विश्व से विरक्ति लेली है ।"

"हाँ नाथ ! उस योगिनी माता ने अपना सब कुछ न्यौछावर करके आपको सुखी बनाया है ।"

"यह तो ठीक है, लेकिन मैं एक बात और कहना चाहता हूँ ।"

"वह क्या ?"

"यही कि राजनीतिक परिस्थियों के कारण मुझे..."

"आप झिझक क्यों रहे हैं साफ कहिए ?"

"मुझे हेलेन के साथ विवाह करना होगा । यह आपको तो..."

"नाथ ! इसमें बुरे की क्या बात है ? इस विशाल विश्व में

आपके सिवा मेरा रह ही कौन गया है ? सब परिजनों को भगवान ने बुला कर आपका आश्रय दिया है । बस आपका सच्चा अनुराग ही चाहती हूँ ।"

"यह तो तुम्हें मिलता ही रहेगा।" फिर मैं उस सुन्दरी को कैसे भुला सकता हूँ जिसने बिम्बसार जैसा सुकुमार राजकुमार मुझे दिया है । और तुम्हारे पिता की ही शक्ति पर तो इतना बड़ा साम्राज्य पा सका हूँ ।

"इन सबकी तुम ही स्वामिनी हो...मै तो केवल प्रबन्धक मात्र हूँ..." चन्द्रगुप्त ने उसके सुन्दर कुन्तलो से खेलते हुए कहा ।

मुझे साम्राज्य की आवश्यता नही, बल्कि आपका सच्चा अनुराग ही चाहिए ।"

"मै विश्वास के साथ कहता हूँ कि मेरा सर्वस्व सदा इन चरणों मे न्यौछावर रहेगा ।"

"सच—" पुलकित होकर दुर्धरा ने पूछा ।

"हां, कभी किसी और बात की इच्छा नही होती ?"

"आप मे ही मेरी सब इच्छाएँ पूरित हो जाती है नाथ ।"

"मैं इन दिनो राज्य सम्बन्धी प्रबन्धों मे इतना उलझा रहा कि मै मनोरन्जन की ओर किंचित मात्र भी ध्यान न दे सका ।"

"अभी हमारा जीवन संकटों मे फंसा हुआ है नाथ ! इसलिए मनोरन्जन की बात कैसे सोची जा सकती है ।"

"गुरुदेव के कारण हम निश्चित है दुर्धरा ! वे सब देखभाल रखते हैं ।"

"उनकी ही महती कृपा से दो बार प्राण रक्षा कर पाया हूँ ।"

"बसन्तोत्सव अवश्य मनाना चाहिए नाथ ।"

"ऐसा ही होगा ।" तभी सम्राट् ने पुकारा—

"कोई है ?"

आवाज सुनते ही कंचुकी शीघ्रता के साथ आया ।

"आज्ञा महाराज—" वह बोला ।

"पाटलिपुत्र मे बसन्तोत्सव मनाने की तैयारी की जाए ! इस बात की सारे नगर में घोषणा भी करा दी जाए ।"

"बहुत अच्छा श्रीमन्" इतना कह कर कंचुकी चला गया ।

इतने मे राजकुमार बिन्दुसार परिचारिका के साथ वहाँ पहुचा । उसके गले में छोटी सी तलवार पड़ी हुई थी ।

बच्चा सुन्दर था...वह तुरन्त ही सम्राट् को देख कर उनकी ओर बढ़ गया है । सम्राट् चन्द्रगुप्त उसे अंक मे उठा कर उसकें प्यार में खो जाते हैं ।

०३

***

"कंचुकी ! "

"महाराज । "

"मेरी आज्ञा का उंलघन क्यो हुआ है ? आज मेले का कोई भी चिन्ह दृष्टि गोचर नहीं हो रहा है–" चन्द्रगुप्त ने सम्राज्ञी के साथ प्रासाद की छत पर बैठे हुए पूछा ।

"महाराज ! इस प्रश्न का उत्तर किसी अन्य से पूछ लिया जाता तो अच्छा होता । "

"इस साधारण सी बात को बताने मे तुम क्यों हिचक रहे हो ?"

"मुझ छोटे से अनुचर के लिए राजाज्ञा भंग छोटी सी बात नहीं है महाराज । "

"तुम्हारी बात गोपनीय रहेगी कंचुकी । "

लेकिन कंचुकी न बोल सके । "

सम्राट् चन्द्रगुप्त इस बात को सहन न कर सका । वह क्रोधावेश में, गरज उठे ।

"बसन्तोत्सव किसने रोका ? "

कंचुकी भयभीत हो उठा.. आज से पूर्व सम्राट् का उसने क्रोध कभी नहीं देखा था ।

उसके मुख से निकल पडा ।

"महामात्य चाणक्य ने...

"मेरी छोटी २ आज्ञाएं भी रोक दी जायेगी ऐसा मैंने स्वप्न में भी नही सोचा था । मैं यह सहन नही कर सकता कंचुकी । तुम यथा शीघ्र जाकर अभिवादनांतर गुरुदेव से निवेदन करो कि यदि कोई विशेष कार्य न हो तो वे इसी समय मुझे दर्शन देकर कृतार्थ करें । "

"जो आज्ञा महाराज !"

कचुकी यथाविधि अभिवादन करने के उपरान्त चाणक्य के पास चुपचाप खड़ा हो गया ।

चाणक्य ने उसके चेहरे का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन किया और बोले ।

"कैसे आये कंचुकी ? "

"महाराज राजप्रा ासाद की छत पर आपकी दर्शनों की प्रार्थना करते है... इस समाचार हेतु आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूँ ।"

"ऐसी इच्छा का कारण । "

"मैं क्या बतला सकता हूँ देव ? "

"उन्हे छत पर किसने भेजा ? "

"वे स्वयं सम्राज्ञी के साथ वहां पहुंच गए । "

"तुम्हारे से क्या वार्तालाप हुआ । "

"केवल बसन्तोत्सव के रुकने का कारण मात्र पूछा था । "

"फिर तुम ने क्या उत्तर दिया ? "

"मैं तो आर्य उत्तर देना ही नही चाहता था , लेकिन देवाज्ञा से विवश हो कर मेरे मुख से निकल पड़ा । "

"क्या निकल पड़ा ? "

"आपका नाम । "

"अच्छा ! मैं चलता हूँ ।"

सुसज्जित रथ पर बैठ कर महामात्य चाणक्य राजप्रासाद के अन्दर पहुचे और कंचुकी के साथ राजप्रासाद की छत पर सम्राट् के सन्मुख पहुँचे ।

दोनों ने गुरुदेव को नमस्कार किया और उन्हे आसन पर सुशोभित करके स्वयं आसनो पर विराजे ।

"वृषल ! आज असमय स्मरण कैसा ? "

"गुरुदेव के दर्शनार्थ ही कारण हो सकता है । "

"अच्छा व्यवहार मात्र को त्याग कर वास्तविकता पर आओ । सम्राट् किसी का समय व्यर्थ में नष्ट नहीं करते है ? "

"बसन्तोत्सव न होने मात्र का कारण जानने मात्र की इच्छा थी गुरुदेव । "

" वृषल ! आज पहली बार उपालम्भ के लिए निमिन्त्रित किया गया हूँ । "

"यह बात नहीं है गुरुदेव !" मैं तो दर्शनार्थ ही ।"

शत्रु के तीसरे वार के आह्वन मात्र को रोकने के लिए ह बसन्तोत्सव रोका गया था ।"

"यह उत्तर तो कुछ युक्ति संगत सा प्रतीत नही हुआ गुरुदेव ! "

"केवल कारण शेष है वृषल ! "

"गुरुदेव ! उत्सवों के अतिरिक्त शत्रु प्रहार का डर तो हर समय ही करना चाहिए । "

"वृषल ! यदि मंत्रित्व पंसद नही है तो हमें मत रखिये... और मन मरजी कीजिए । "

"गुरुदेव रुष्ट न हों ! मन्त्री को आज्ञा के स्थान पर केवल मंत्रणा देनी चाहिए ।"

"सम्राट् की अनुपस्थिति मे आज्ञा कौन करे ?"

"महामात्य !"

"अब ।"

"सम्राट् की उपस्थिति मे आज्ञा देने का उन्हे कोई अधिकार नही । "

"भूलते हो वृषल ! मंत्री के कधे पर राज्य का सारा भार होता है ।"

"यह ठीक है ! लेकिन आज्ञायें मेरी चलेंगी । "

"अनुचित आज्ञा न चल सकेगी वृषल । "

"औचित्य अनौचित्य का निर्णय कौन करेगा ? "

"मंत्रि मंडल, जिसका सदस्य सम्राट् भी होता है ।"

"राजाज्ञा मंत्री पर बाधित नहीं । "

"नही ! उनको बनाना अन्य का काम है । "

"उस पर उत्तरदायित्व तो है ।"

"अवश्य ।"

"गुरुदेव ! मैं आज से स्वयं राज्य भार को उठाने के लिए उद्यत हूँ । "

"मैं इस भार से मुक्त होता हूँ—" चाणक्य ने खड्ग फैक कर कहा—"वृषल ! अन्य महामात्य नियुक्त कर लीजिए । "

"आप जब तक तो कार्य कीजिए जब तक कोई योग्य व्यक्ति मुझे न मिल जाये..." चन्द्रगुप्त ने उन्हें खड्ग देते हुए कहा ।

" मेरे अब रहने मात्र से आप का प्रबन्ध बिगड़ जायेगा

वृषल। अतः प्रबन्ध यथा शीघ्र करो ।"

" प्रयत्न करुंगा । "

',ईश्वर ही रक्षक ।"

इतना कह कर चाणक्य बिना आशीर्वाद दिए क्रोधावेश में प्रासाद से नीचे उतर गये और रथारोही होकर अपनी कुटी को चल दिए ।

१३

★★★

"मेरा अपराध—" बन्दी के रुप में धननन्द ने पूछा ।

"आप स्वयं जानते है ।"

"फिर भी दण्ड देने से पहले अपराधी को उसका अपराध बताया जाता है काला ब्राह्मण ।"

"आपने कई अपराध किए है... जिनके अभियोग आप पर लगाये गये हैं । आपने राजकोष से मणिमुक्तादि नियम विरुद्ध लिए, और अन्त में शयनागार में सहस्र सैनिक भेजे । इन सब बातों से आपका तात्पर्य ।"

"मैं बतलाने के लिए उद्यत नही ।"

"यह मैं पहले ही जानता था । मैंने अपना प्रण तो आपको पदच्युत करके ही पूरा कर लिया था । आपके अभियोगों को अब महादण्डनायकजी के सामने प्रस्तुत किए है ।"

"धननन्द जी ! आप जो कहना चाहते है वह कहें । मैं इस समय धर्मासन पर विराजमान हूँ, इस लिए न्याय ही होगा । आप राजकोष

से मणि मुक्तादि लेने का आरोप लगाया गया है । क्या यह सत्य है ?" महादण्डनायक जी ने पूछा ।

"बिल्कुल सत्य है..." धननन्द ने उत्तर दिया ।

"विषकन्या आप द्वारा ही पालित थी और आपकी इच्छानुसार ही वह सम्राठ का अन्त करने के लिए राजप्रासाद में भेजी गई थी ।"

"इस का प्रमाण ।"

"स्वय बन्दीगृह में विषकन्या ।"

"तब मै कोई उत्तर नही दे सकता ?"

"आपने दो बार सहस्र सैनिको द्वारा सम्राट के बध करैाने का प्रयत्न किया ।"

"अवश्य ।"

"अब आपके सभी अभियोग प्रमाणित हो चुके है । इन के दण्ड के उपलक्ष मे आप मृत्यु के अधिकारी है ।"

"इसका मुझे पहले से ही पता था ।"

"वृषल ने आपके साथ सदा ही दया का व्यवहार रखा है; लेकिन आपने अपनी कुटिलता को नही त्यागा । अब मैं चाहता हूँ कि आप मुझसे खड्ग-युद्ध करे—" चाणक्य ने कहा ।

"मालुम पड़ता हे ब्राह्मण तुम्हें मौत ने धक्का दिया है जो आज एक क्षत्रिय से खड्ग युद्ध के लिए कह रहा है । लेकिन मैं अन्तिम समय अपने हाथ एक ब्रह्मण के खून से नही रँगना चाहता । यदि युद्ध ही करना है तो चन्द्रगुप्त को भेज..." धननन्द ने गर्व से कहा । सम्राट् चन्द्रगुप्त उसके उत्तेजनात्मक बचनों को सहन न कर सके ।

"सम्राट् प्रवर ! खड्ग उठाइये ! आपका शत्रु युद्ध के लिए तत्पर है ।"

"मैं तैयार हूँ चन्द्रगुप्त !" धननन्द ने कहा ।

दोनों सम्राट् मैदान में आ डटे ।

खड्ग युद्ध प्रारम्भ हो गया ।

खड्गों की खनखनाहट सुनाई देने लगी ।

तभी चन्द्रगुप्त ने कस कर वार किया ।

उसी समय धननन्द का सिर कट कर पृथ्वी पर जा पड़ा ।

सारी जमीन रक्त से रंजित हो उठी ।

तभी चाणक्य ने सम्राट् को आलिगन बद्ध करते हुए कहा—

"वृषल ! तुझ जैसा निडर शिष्य पाकर मैं बहुत प्रसन्न हू । मेरी तेरी किसी प्रकार की कलह नही है वत्स ? अब मै तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि तेरा राज्य काश्मीर से कन्या-कुमारी तक विस्तृत रहे और एकच्छत्र राज्य करता रहे ।"

"गुरुदेव की कृपा शिरोधार्य है । लेकिन..

"लेकिन क्या ?"

"आर्य ! धननन्दजी का मरणोत्तर मस्कार यथाविधि करा दीजिएगा और इनका सारा सामान योगिनी सुनन्दा को दे दीजिएगा । उनके न लेने पर उसे कोष में जमा करा दीजिएगा ।

"ऐसा ही होगा ।"

इतना कह कर चाणक्य अन्तिम संस्कार के प्रबन्ध के लिए चले गए ।

२३
★★★

लौहित्य नगर के बन में एक सिद्धहस्त सन्यासी अपने कुछ शिष्यो के साथ धूनी रमाए हुए हैं ।

उनके दर्शनार्थ वहां के निवासी प्रति दिन बन मे पहुँच रहे हैं ।

वे सभी प्रसन्नचित्त उनका आशीर्वाद पाकर अपने गन्तव्य स्थान को लौट आते है । भूतपूर्व पाटलिपुत्र के महा सेनापति भद्र-शाल भी अपनी छिपी हुई वेशभूषा में उस महापुरुष के दर्शन करने के लिए वहाँ पहुँचे ।

उन्होंने उस महा पुरुष के वेश मे महर्षि कात्यायनजी को देखा ।

उनकी मुच्छ और केश बिल्कुल साफ थे । उनके सारे वस्त्रादि साधुओ जैसे थे । भद्रसाल भीड़ के जाने की राह देखते रहे ।

संध्या के समय उन्हे एकान्त वातावरण मिला ।

उन्हौने कात्यायन जी के चरणों में सिर झुका दिया ।

कात्यायन जी महा सेनापति भद्रशाल से मिल कर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हे लेकर वे अपने विश्राम गृह में आए ।

वहाँ कुशासन पर बैठ कर दोनों ने वार्तालाप किया ।

"आर्य ! अब क्या होगा ?" भद्रशाल ने शोकातुर वाणी में कहा । आप सारे साम्राज्य की रक्षा का बोझ मुझ पर छोड़ कर गए ; लेकिन मैं महाराज नन्द और उनके विशाल साम्राज्य की रक्षा न कर सका । मैं इसी क्षोभ की ज्वाला में भस्म हुआ जा रहा हूँ ।"

"इसमें तुम्हारा क्या दोष है भद्र ? मैं ही अष्टाध्यायी की

कारिका में ऐसा लीन हुआ कि अपने ईष्टदेव को खो बैठा । उन्होंने मेरे पर पूर्ण विश्वास किया ; लेकिन मैं उस विश्वास की रक्षा न कर सका । मैंने एक व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थ के पीछे अपने देव का निधन करा दिया । अब क्या किया जाए । उनकी आत्मा को किस प्रकार शान्ति पहुँचाई जाए यह बिल्कुल समझ में नही आता ।"

"आर्य ! शत्रु को दण्ड देने मात्र से महाराज की आत्मा को शान्ति मिल जाएगी"—भद्रशाल ने कहा ।

"तुम्हारा परामर्श ठीक है भद्र ।"

"इस के लिए इस वेशभूषा को त्याग कर महाराज विशालाक्ष जी से भेट करनी होगी ।"

"भद्र ! अब तक तो यही वस्त्र रोटी देते रहे और इन्होने ही मेरे शरीर की रक्षा की । यदि मै अपने वास्तविक रूप मे इधर आता तो काला ब्राह्मण का कोप मुझे भस्म कर डालता ।"

"यह तो आपने ठीक किया आर्य ! मै भी महाराज के पराजित होने के उपरान्त गुप्त रूप से उनकी सहायता करता रहा । विषकन्या और सशस्त्र वीरों के गुप्त प्रयोगो द्वारा चन्द्रगुप्त की हत्या की चेष्टा की । लेकिन उस काला ब्राह्मण ने मेरे सारे प्रयोगो को असफल बना डाला । इस पर राजकुमारी सुनन्दा द्वारा महाराज को सचेत रहने के लिए कहलवाया । लेकिन देव अपनी शत्रुता को न भुला सके । अन्त में उसी कारण से उनका शरीरान्त हुआ ।"

"भद्र ! देव का अमूल्य जीवन असमय ही ढुल गया । यदि मैं उन्हें समझाता तो वह अवश्य मान जाते । फिर इसके आगे क्या हुआ ?"

"आधे से अधिक सैनिक मौर्यकुमार के स्वामिभक्त बन गये और शेष मेरे साथ ही बनो में भटकते फिरते हैं आर्य ।"

"अच्छा तो आप विशालाक्ष जी तक सन्देशा पहुंचा--दें

ताकि लौहित्य नरेश जी से ही बात चीत करके देखें; क्योंकि नन्दवंश का हित चाहने वाले यही नरेश हैं ।"

'जो आज्ञा आर्य । इतना कह कर भद्रशाल रात्रि की कालिमा में खो गये ।"

महर्षि कात्यायन सब कार्यो से निवृत्र होकर विश्राम के लिए प्रस्तुत हो गये । उन्होंने सोने की चेष्टा कीं, परन्तु मानसिक द्वन्दों ने उन्हें विश्राम न करने दिया । वे उठ खडे हुए और मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करने लगे ।

३३

***

लौहित्य नरेश विशालाक्ष जिस समय एक विश्वस्त कर्मचारी द्वारा सूचना पाकर महामंत्री से मिलने के लिए पहुंचे । उस समय वे उद्विग्न अवस्था में अपने आवास में चक्कर काट रहे थे । महाराज को देखते ही उनके चेहरे पर खुशी की झलक दिखाई दी और अपने पास से भीड़ को दूर करने के अभिप्रय: से अपने साथी से विश्राम के लिए कहा ।

उसने तुरन्त ही उपस्थित जनों को वहां से जाने के लिए कहा । वे लोग देव के आदेश को अंगीकार करके वहां से चले गये । उन के चले जाने के उपरान्त महामंत्री जी ने महाराज को सम्मान पूर्वक बैठाते हुए पूछा–

"नंदवशं के हित के लिए क्या कदम उठाना चाहिए महाराज ? मेरे से इस वंश का अहित नहीं देखा जा रहा है ।"

"ठीक कह रहे हो मंत्री जी ! आपकी इस लम्बी अनुपस्थिति में

ही सारा राज्य समाप्त होगया । मैं तो अभी अपनी कन्या की मृत्यु को न भुला सका था ; लेकिन दामाद धननन्द के विनाश की सूचना मिली । पिता के होते हुए पुत्री के परिवार को शत्रु विनिष्ट करदें । इससे बढकर मेरा और अपमान क्या हो सकता है ?" महाराज विशालाक्ष ने नेत्रों से अश्रुओं को पोंछते हुए उत्तर दिया ।

"संयम और धैर्य से काम लीजिए महाराज । तभी शत्रु का सामना कर सकते हैं । इस समय हमें सैन्य और धन की बहुत आवश्यकता है–" कात्यायन जी ने कहा ।

"मंत्री जी ? आपने जो कोष अमानत रुप में हमारे देश में रखा था, वह पूर्ण रूप से सुरक्षित है । इसके अलावा मेरा सार कोष आपका ही है । इन सब से आप शीघ्र ही शत्रु को कुचल दें और उसका सिर मेरे सन्मुख लादें ; जिससे मेंरे हृदय मे धधकी हुई अग्नि शात हो जाये ।"

"महाराज की बात को सुन कर भद्रशाल ने कहा—"देव ! पच्चीस हजार सैनिक तो इस समय लौहित्य के दुर्ग मे तैयार है । पाच सहस्र के लगभग वेश बदल कर इधर उधर मारे २ फिर रहे हैं ।" इसके अतिरिक्त इतने कोष के बल पैर एक लाख नए सैनिक एकत्रित हो सकते हैं ।"

"भद्र ! तुम्हारा कथन सत्य है । परन्तु सैन्य संगठन से पूर्व हमें यह सोच लेना चाहिए कि युद्ध की आधार शिला क्या हो ?"

कात्यायन ने शान्त भाव से कहा ।

"सुनन्दा के लिए ही यह युद्ध होगा—" लौहित्य नरेश ने तुरन्त उत्तर दिया ।

"महाराज ! सुनन्दा ने राजसी वैभव को ठुकरा कर योगिनी वेष को अपनाया है । इसलिए अब उसका शास्त्र हिंसा न होकर अहिंसा है ।"

"महामंत्री जी ! वह अभी नादान है। समझाने बुझाने से वह यह बाना त्याग सकती है।"

"यदि ऐसा है तो उन्हें लौहित्य दुर्ग में बुलाने का प्रबन्ध किया जाए। मैं भी इस वेष को त्याग कर अब दुर्ग की ओर प्रस्थान करुंगा—" कात्यायन ने कहा।

कात्यायन की आज्ञा का पालन हुआ। एक विश्वस्त कर्मचारी सुनन्दा को लाने के लिए वहाँ से चला गया।

महामंत्री कात्यायन जी भी अपनी शक्ति का परिचय पाकर राज्य-प्रासाद मे पहुंच कर लौहित्य नरेश के अतिथि बने।

उधर सुनन्दा मातामह के आमत्रण को पाकर उसी समय लौहित्य नगर पहुंची। उसने राजप्रासाद मे ठहरना उचित न समझा। इसलिए वह अपनी सखी के साथ उसके नगर के एक आश्रम मे ठहरी।

संध्या समय वे उनसे मिलने के लिए राजप्रासाद में गई, वहाँ पर महाराज के पास महामन्त्री कात्यायन को देख कर अचम्भित रह गई। महामन्त्री कात्यायत ने उसके भावों को पढते हुए कहा—"बेटी ! नन्द-वंश की दुर्दशा तो तुमसे छिपी हुई नही है। सम्राट् और साम्राज्ञी असमय मे ही काल के ग्रास हो चुके है और तुमने इस राज्य से विमुख होकर यह बाना धारण कर लिया है, जिसे देख कर मेरे कलेजे के टुकड़े २ हुए जारहे है।"

सुनन्दा शान्त बैठी हुई महामंत्री के वचन को सुनती रही और वे कहते रहे—"बेटी ! इस वंश का अन्य कोई आधार होता तो मैं कभी तेरे व्रत को तोड़ने के लिए न कहता; लेकित अब देख रहा हूँ कि तुझे अपने धर्म को त्यागना ही होगा। यदि तुमने भी हमारी इच्छाओं को ठुकरा दिया तो हम शत्रु से अपने महाराज की हत्या का प्रतिकार न ले सकेंगे।"

इस पर भी सुनन्दा ने कोई उत्तर नहीं दिया ।

तब पुनः कात्यायन ने कहा—"बेटी ऐसी स्थिति मे इस धर्म को त्याग करना पाप नहीं है । तू मेरी ओर ही देख ! मैं भी अवकाश ग्रहण करने के अभिप्राय: से काश्मीर चला गया था ; लेकिन देश के विनिष्ट होने का समाचार सुन कर मुझे धर्म का साथ छोड कर पुनः शस्त्र को अपने हाथ में उठाना पड़ा है।"

सुनन्दा अब अधिक देर तक चुप न रह सकी । उसने तुरन्त ही कात्यायन की बात का जवाब दिया—"देव ! आप पूर्णरूप से सन्यासी नही बने थे । आपने तो केवल इस वेश को प्राणों की रक्षा के लिए ही अपनाया था ; परन्तु मैं इस धर्म का गत ६ वर्षों से पालन करती आ रही हूँ । मैंने स्वर्गीय पिता जी के कहने पर भी इसको नही छोड़ा था, फिर मैं अब इसे कैसे छोड सकती हूँ ?"

"समय सब कुछ करा देता है बेटी—" कात्यायन ने कहा ।

"क्या मुझे भी समय के आधीन रहना पड़ेगा ?" सुनन्दा का अन्तःकरण चीख उठा ।

"इस समय पराधीनता का प्रश्न नहीं है बेटी । अब तो नव नंद-वंश को स्थिर रखने का प्रश्न है ।"

"स्थिर, अस्थिर से मुझे क्या प्रयोजन ?"

"प्रयोजन तो स्पष्ट है बेटी । अब तुम्हारे सिवा इस राज्य का कोई भी उत्तराधिकारी नहीं है ? यदि तुमने भी इस ओर से मुख मोड़ लिया तो......"

"तो क्या हो जाएगा ?" सुनन्दा ने पूछा ।

"अनाधिकारी वंश सम्राट् बन जाएगा ।"

"बन जाने दीजिएगा ।"

"यह कदापि नहीं हो सकता है । हमारे जीवित रहते हुए शत्रु के कदम इस ओर नहीं आ सकते हैं सुनन्दा ।"

"आप जैसा उचित समझें करें नाना जी । मैं अब किसी से शत्रुता मोल लेना नही चाहती हूँ ?" सुनन्दा ने कहा ।

"इसमें तुम्हारी शत्रुता क्या है बेटी ? तेरे नाम के पीछे हमारी शक्ति काम करेगी । इसलिए शत्रुता का पाप हमें लगेगा । तनिक इस बात को तो सोंच ! इस वंश की ८० वर्ष की साख को अधिकार शून्य नवयुवक मिटाने में तल्लीन है । स्वर्गीय महाराज धननन्द ने सारे राज्य का भार मेरे पर ही छोड़ा था, लेकिन मैंने दो वर्ष का समय व्याकरण रचना मे ही लगा दिया...जिसके कारण इतना प्राचीन वंश अराजकता की गोद मे सोना चाहता है । बेटी...तनिक मेरे बुढ़ापे की ओर भी ध्यान दो । यदि तुमने अपना हठ नही त्यागा तो मुझे कलकित होना पड़ेगा—" कात्यायन ने आशातीत शब्दो मे कहा ।

"दादा जी ! आपकी मानसिक वेदना से मैं पूर्णतया अवगत हूँ । इस पर मैं नही चाहती कि आप को मेरे कारण और भी दु:ख पहुँचे, लेकिन मेरे लिए भी पथ से बिचलित होना मृत्यु के समान है । अत: आप ऐसी कोई राह निकालें जिससे यह प्रश्न हल हो जाये ।"

सुनन्दा के इन शब्दों ने महर्षि कात्यायन को सोच मे डाल दिया । उन्हें स्वप्न में भी ऐसी आशा न थी कि सुनन्दा उनकी बात की अवहेलना करेगी । वे तो उसे पौत्री के समान ही समझते रहे थे । कभी इनके पिता महाराज धननन्द ने भी बात को ठुकराने का दु:साहस नही किया था, लेकिन आज उनकी गोदी में ही पलने वाली लड़की सारी आशाओं को क्षार बना रही है ।

उन्हे चिन्तित देख कर सुनन्दा ने पुछा—"क्या सोच रहे हैं दादा जी ?"

"यही बेटी कि राजनीति का ऊँट किस करवट बैठता है ?"

'आप इस विषय को लेकर इतने चिन्तित क्यो हो रहे हैं ? मेरे स्थान पर मेरे चचेरे भाई सबलनन्द को उतराधिकारी मानकर अपने कार्य को पूर्ण करें ।"

सुनन्दा के मुख से सबलनन्द का नाम सुनकर कात्यायन की बूढ़ी आंखे चमक उठीं । उन्होने विशालाक्ष की ओर देखा ।

विशालाक्ष ने महर्षि कात्यायन जी के आशय को समझ कर कहा "जब बेटी अपनी जिद पर ही तुली हुई है तो कार्य साधन के लिए सबलनन्द को ही उत्तराधिकारी बनाना पडेगा ।"

"अच्छा, बेटी तेरी इच्छा ! लेकिन इन सब बातों को पूर्णतया गोपनीय रखना होगा–" महर्षि कात्यायन ने सुनन्दा को उठते हुए देख कर कहा ।

"ऐसा ही होगा दादा जी"—इतना कह कर सुनन्दा अपनी सखी के साथ अपने आवास स्थान की ओर लौट गई और अपने धर्मकृत्यों में पहले के समान ही लग गई ।

४३

***

'महाराज विशालाक्ष अपने वार्ताकक्ष मे बैठे हुए किसी समस्या का हल क़र रहे थे । उनके पास ही वैसी मुद्रा में महर्षि कात्यायन और भद्रशाल भी बैठे हुए थे । थोड़ी देर तक पूर्णतया निस्तब्धता छाई रही । अन्त में नीरवता को भंग करते हुए महर्षि कात्यायन ने कहा—"उत्तराधिकारी के रूप में सबलनन्द वैसे तो ठीक ही है; लेकिन उन्हें रण: कौशल की शिक्षा को पूर्वतया ग्रहण करना पड़ैगा ।"

"आपने ठीक कहा है। वह अब तक इस कौशल से विमुख ही रहा है। इसका कारण यही था कि उसे इस जीवन मे सम्राट् बनने की आशा न थी—"महाराज ने मौन भंग करते हुए कहा।

"अब तो बिल्ली के भागों छीका टूट गया है महाराज—"सेनापति भद्रशाल ने हँसते हुए महाराज की बात का समर्थन किया। इतने में ही द्वारपाल ने राजसी अभिवादन करते हुए कहा।

"कुमार पधारे है महाराज।"

"उन्हे सम्मान पूर्वक यहा ले आओ।"

महाराज का आदेश पाकर द्वारपाल कुमार को लेने के लिए चला गया।

थोडी देर मे ही कुमार द्वारपाल के साथ उनके पास पहुचे और सबको यथायोग्य अभिवादन करके महाराज के समीप बैठ गये।

महर्षि कात्यायन की बूढी आखो ने सामने बैठे हुए २४ वर्षीय वलिष्ठ नवयुवक को देखा। उसके तेज को देखकर उन्हें कुछ शान्ति का सा आभास हुआ। तभी उन्होने वार्त्ता चलाने के अभिप्राय: से कहा—"कुमार! नवनन्दवंश की शोचनीयवस्था तो तुमसे छिपी हुई नही है।"

"हाँ देव! मैं उससे भली भांति परिचित हूँ। उसकी हीनावस्था के कारण मुख उठाते हुए भी लज्जा का आभास होता है।

"तुम्हारा कथन सत्य है कुमार! घायल की गति घायल ही जान सकता है। तुम्हारे समान हम भी साम्राज्य का अधोपतन देखते हुए दुःखी है।"

"मेरा सब कुछ आप लोगों की सेवा के लिए अर्पित है ।"

. "वत्स ! हमें तुमसे ऐसी ही आशा थी" महाराज ने हर्षित स्वर मे कहा ।

"क्या मै सैन्यशक्ति के विषय मे कुछ जान सकता हूँ ?"

"क्यों नही ? मौर्यकुमार चन्द्रगुप्त ने काला ब्राह्मण की सहायता से पदातियो, रथो, मैंगलों और हस्थादियो की पहली हमारी सैन्य-शक्ति के समान ही सेना एकत्रित की है । इस समय हमारी शक्ति उससे आधी से कुछ अधिक है । इसके द्वारा हम बंग मे आकस्मिक आक्रमण करके मौर्य शक्ति को यहाँ से क्षीण कर सकते है । ऐसा हो जाने से हमारे पास धन और बल दोनो वस्तुएँ हो जाथेगी । इसके बाद नैपाल, कलिग, और रीवॉ को भी अपने आधीन कर सकेगे । इन देशों के आ जाने से हमारी सेन्य शक्ति मौर्य कुमार की शक्ति के बराबर हो जायेगी—" महर्षि कात्यायन ने सारी अवस्था से अवगत कराने के लिए इस प्रकार कहा ।

"देव ! मुझे इस कौशल की शिक्षा भी दिलाने का प्रयत्न कीजिएगा ।"

अवश्य कुमार ! परन्तु इस वार्तालाप को अभी गोपनीय ही रखना होगा । जरासी बात खुलने से हमारा षड्यन्त्र विनिष्ट हो जायेगा ।"

"सैन्य संगठन के स्थान निर्धारित कीजिए ।"

कुमार की यथा सगत बात को सुनकर लौहित्य नरेश ने कहा "मेरा प्रदेश पहाडी है । अतः यहां पर पच्चीस सहस्र सेना एकत्रित करने के लिए कई स्थान सुगमता से मिल सकते है । इन स्थानों पर का यातायात बन्द कर दिया जायेगा ; जिससे बाहरी लोग इन स्थानों पर नहीं पहुँच सकेंग और मौर्य कुमार भी उस से अवगत नही हो सकेगा ।"

महाराज की बात को सुनकर सेनापति भद्रशाल ने कहा—

"महर्षि कात्यायन और मैं इसी प्रकार गुप्त जीवन व्यतती करेंगे । कुमार आपके आतिथ्य में रहकर सब कार्य कर सकेंगे ।"

"ऐसा ही होगा सेनापति ।"

लौहित्य नरेश की बात को सुनकर महर्षि कात्यायन ने अपने विचार प्रगट करते हुए कहा—

"इधर सैन्य संगठन का कार्य यथा शीघ्र होना चाहिए उधर सेनापति जी कुमार को रण कौशल की शिक्षा दें ।"

"इसी कार्यक्रम पर चला जायेगा तो तीन चार वर्ष के प्रयत्न से अपना साम्राज्न पूर्ण रूप से आजायेगा—"

लौहित्य नरेश ने कहा ।

"तथास्तु..." कह कर महर्षि कात्यायन ने महाराज की अनुमति से सभा विर्साजित की ।

सब लोग अपने-अपने स्थानो को चले गए । अगले रोज से ही कार्य संचालन होने लगा । कुमार सबलनद रण कौशल की शिक्षा पाने लगे ।

समय बीतता रहा...

और महर्षि कात्यायन स्वप्न में विजय की धूमिल रेखा देखते रह गए ।

३५

★★★

"महर्षि जी !" सामने देखिए, कुमार कितने प्रयत्न से रणकौशल की कमी को पूर्ण कर रहे है ?" महाराज विशालाक्ष ने कुमार सबल-नन्द की ओर संकेत करते हुए कहा ।

"महाराज ! मै भी इनके पूर्ण उत्साह को देख रहा हूँ । यह तो हमारे सौभाग्य की बात है जो इतना अच्छा उत्तराधिकारी बिना प्रयास के ही मिल गया है । मेरे विचार मे कमलाक्षी के लिए इससे योग्य वर कहीं नही मिल सकेगा ?"

"आपका कथन सत्य है । मै भी कुमार की योग्यता, नम्रता और कार्य कुशलता पर मुग्ध हूं, लेकिन अपने मुख से इस सम्बन्ध के लिए कुछ नही कह सकता ।"

"इसके लिए इन दोनों में अनुरक्ति बढाने का प्रयत्न कीजिए ।"

"वह कैसे हो सकता है ?"

महाराज विशालाक्ष ने आश्चर्य से पूछा ।

"इन दोनो का एक ही साथ पठन-पाठन का प्रबन्ध कर दीजिएगा इससे वे दोनों शीघ्र ही स्नेह बँधन में बंध जाएँगे और आप की पौत्री के विवाह की समस्या भी हल हो जाएगी ।"

अभी कात्यायन जी ने इतना ही कहा था कि कमलाक्षी भी वहाँ पहुँच गई । उसे देख कर दोनो बहुत प्रसन्न हुए ।

उन्होंने उसी समय उन दोनो का पारस्परिक परिचय कराना उचित समझा ।

उनके कुछ दूरी पर सबलनन्द सेनापति भद्रशाल से रण कौशल

की शिक्षा ले रहे थे । उनका ध्यान इस ओर नही था । वे अपनी धुन में लीन थे ।

तभी उन्हे महाराज का सदेश मिला । वे तुरत ही सदेश-वाहक के साथ उस स्थान पर पहुंच गए, जहां पर महाराज विशालाक्ष, कमलाक्षी और महर्षि कात्यायन जी खड़े थे ।

कुमार सबलनद ने राजसी अभिवादन किया और चोरी-चोरी १६ वर्षीया सुन्दरी के सौदर्य का रसास्वादन करने लगा ।

लौहित्य नरेश के आतिथ्य में रहते हुए उसे काफी दिन व्यतीत हो गए थे; परतु आजसे पूर्व उसने इस कोमलागी को कभी नही देखा था; उसके नेत्र इस गौरवर्ण सुडौल युवती के प्रत्येक अंग को निहारने का प्रयत्न कर रहे थे ।

उसका मन इसका परिचय पाने के लिए उतावला हो रहा था, परंतु वह स्वय पूछने मे लज्जा का अनुभव कर रहा था ।

तभी महाराज विशालाक्ष ने शाति को भंग करते हुए कहा—

"वत्स ! यह मेरी पौत्री कमलाक्षी है । मै चाहता हूँ कि यह भी तुम्हारे साथ रह कर ही पठन-पाठन करे ।"

"यह तो मेरा अहोभाग्य है महाराज ।"

कुमार की बात सुन कर महाराज गदगद हो गए । उन्होने कमलाक्षी को कुमार के साथ प्रभद बन मे घूमने की अनुमति देदी ।

कमलाक्षी भी इतने अल्प परिचय से ही कुमार पर मुग्ध हो गई थी । उसकी इच्छा भी अकेले मे कुमार के साथ वार्तालाप करने की थी परंतु नारी स्वभाव और लज्जा वश वह अपनी इच्छा को महाराज के सामने प्रगट न कर सकती थी । इस समय बिना मागे ही कमलाक्षी को अनुमति मिल गई थी । इस कारण से उसकी हृदय-कली खिल उठी । कुमार की हृदयरूपी घटा को देख कर उसका मन-मयूर नृत्य कर उठा ।

वह कुमार को लेकर प्रमद बन मे पहुँची । यह बन लौहित्य-नरेश

ने अपने परिवार के भ्रमण हेतु बनवाया था। उसमें हर प्रकार के फूल फल इत्यादि के वृक्ष थे। इसके अदर कितने ही सुन्दर कुज बने हुए थे। छोटे-छोटे जलाशयों मे हंस दम्पत्ति तैर रहे थे। रॅग बिरंगी मछलिया जल की तरॅगों से क्रीडा कर रही थी।

कुमार की दृष्टि उनको देखती ही रह गई। वह वहुत देर तक रॅग बिरॅगी मछलियो में ही खो गया।

उसे तल्लीन देख कर कमलाक्षी ने कधे पर धीरे से हाथ रखते हुए कहा—"क्या देख रहे है आप ?"

कुमार को स्वप्न मे भी इस बात की आशा न थी कि राजकुमारी उसके सन्मुख इतनी शीघ्र खुल जायेगी। वह तो स्वय ही उससे बातें करने के लिए युक्ति सोच रहा था। राजकुमारी के इन शब्दो ने उसकी विषमता को दूर कर दिया। उसने राजकुमारी के कोमल हाथो को अपने हाथों मे लेते हुए कहा—"काश ! इतनी सुन्दर मछ-लियॉ मेरे मन सरोवर में भी किलोले किया करती।"

"अच्छा तो आप कवि भी है। इस बात का पता तो आज ही लगा है कि तलवार का धनी कलम को भी पकड़ सकता हे।"

"क्यो नही ? वैसे इन दोनों का क्षेत्र तो भिन्न २ है न।"

"मै आपका आशय नही समझी कवि महाराज।"

"यही की एक का क्षेत्र कर है, तो दूसरी का क्षेत्र मन।"

"तुलना तो अति उत्तम है"—इतना कह कर राजकुमारी कमलाक्षी अट्टहास कर उठी। कुमार ने भी उसका साथ दिया।

वे दोनों सुगन्धित समीर रसास्वादन करते हुए आगे बढ़ गये।

उन दोनों का हृदय इतनी शीघ्र ही एक दूसरे के निकट पहुँच गया था कि उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि वे एक दूसरे से पृथक कैसे रह सकेंगे ?

दोनों का स्नेह नेत्रों के द्वारा ही बढ़ रहा था, लेकिन जिह्वा कुछ देर के लिए बन्द हो गई थी।

तभी कुमार ने कुंज के समीप बैंच पर बैठते हुए कहा ।

"क्या मैं कुछ अनुनय कर सकता हूँ ?"

राजकुमारी ने मादक नेत्रो से देखा । मानो उसके नेत्र कुमार की अनुनय सुनने के लिए आतुर हो रहे थे । कुमार ने उसकी मूक भाषा को समझ कर कहा—

"क्या मेरे नेत्र इस सौन्दर्य का जीवन भर रसास्वादन न करने देंगी राजकुमारी ?"

राजकुमारी कमलाक्षी भी स्वयं ऐसा ही चाहती थी; लेकिन नारी सुलभस्वभाव के कारण यह प्रस्ताव वह स्वयं कुमार के सन्मुख नही रख सकी थी । उसने अन्तरिक खुशी को छिपा कर कुमार के अनुनय का जबाब दिया ।

"यह तुच्छ जीवन यदि आपकी सेवा मे अर्पित हो जाये तो मेरा सौभाग्य है कुमार । इसके लिए आपको मेरे पितामह से बात-चीत करनी होगी ।"

"उन से बात चीत करने से पूर्व आपकी सम्मति भी तो मेरे लिए अनिवार्य है ।"

"वह तो अब मिल चुकी है कुमार"—राजकुमारी कमलाक्षी इतना ही कह पाई थी कि उसकी प्रिय सखी वहां पर पहुंच गई । उसे देखते ही भेद खुल जाने के अभिप्राय: से राजकुमारी सकुचा गई ।

राजकुमारी को लजाते हुए देख कर सखी ने पूछा— "कुमार जी ! आज तो बहुत देर तक बातें हो रही है ! क्या मै भी उनको सुन सकती हूँ ?"

"क्यों नहीं ?"

कुमार ने बातों को बदलते हुए कहा—

"आपकी राजकुमारी शास्त्र बिद्या के लिए कह रही थी ।"

"क्या उत्तर मिला ?"

"जिसकी आशा थी—" राजकुमारी ने शीघ्रता से उत्तर दिया ।

"आपका आशय नही समभी राजकुमारी जी ।"

• "यही कि मेरा कोमल शरीर इस विद्या के लिए नही बनाया गया है ।"

इतना कह कर कमलाक्षी शान्त हो गई ।

"कुमार जी । आपने मेरी सखी का दिल तोड दिया है ।"

"आप जोड़ दीजिएगा—" कुमार ने हंसते हुए उत्तर दिया ।

सखी कुछ उत्तर देना ही चाहती थी कि सदेशवाहक ने एक पत्र कुमार के हाथ मे दे दिया ।

कुमार ने पत्र खोल कर पढा, तब तक सदेश-वाहक उसकी प्रतीक्षा मे खड़ा रहा ?

पढने के उपरान्त कुमार ने सदेश-वाहक से कहा कि मै अभी तुम्हारे साथ चलता हूं ।

इतना कहने के उपरात कुमार ने राजकुमारी से जाने की अनुमति माँगी ।

राजकुमारी ने सहर्ष जाने की अनुमति दे दी और स्वयं सखी के साथ अन्त:पुर की ओर लौट गई ।

उधर कुमार जब महर्षि कात्यायन जी के पास पहुंचा । उस समय वे बैठे हुए किसी पुस्तक का अध्ययन कर रहे थे ?

कुभार को अपने सन्मुख खड़ा हुआ देख कर उन्होंने पुस्तक को वन्द करके रख दिया और कुमार को अपने पास ही बैठने के लिए संकेत किया ।

महर्षि जी का संकेत पाकर कुमार उनके पास ही एक कुशासन पर बैठ गया ।

कुमार के बैठते ही महर्षि कात्यायन ने पूछा—

"वत्स ! किसी प्रकार की तुम्हे यहाँ पर असुविधा तो नहीं है ।"

"आपकी महती कृपा के आगे मुझे क्या असुविधा हो सकती है प्रभुवर ?"

कुमार ने हर्षित ध्वनि में उत्तर दिया ।

"परंतु मेरा आपके प्रति एक निवेदन अवश्य है ।"

"शीघ्र कहो, हम तुम्हारी आकॉक्षाओ को पूर्ण करनें का अवश्य प्रयत्न करेंगे ।"

"मेरा विचार है कि विवाह..."

कुमार पूरी बात भी न कह पाए थे कि महर्षि ने बीच में ही बात काटते हुए कहा—

"क्या राजकुभारी तैयार है ?"

महर्षि के शब्द सुन कर कुमार की वही दशा हुई कि किसी चोर की थानेदार के सामने चोरी का माल पकड़े जाने पर हुआ करती है ? कुमार ने उत्साही स्वर मे कहा;

"देव ! वे सहमत है, परन्तु पितामह की अनुमति से ही सब काम करना चाहती है । अतः आप मेरी ओर से महाराज से निवेदन करदें ।"

"मै इस कार्य को अभी कर देता हूँ ।"

इतना कह कर उन्होंने एक पत्र लिख कर महाराज के पास पहुँचा दिया ।

पत्र को पढकर महाराज फूले न समाये और तुरन्त ही महर्षि जी के दर्शनार्थ उनके पास पहुँचे । वही पर कुमार को देखकर उन्होंने कहा—

"वत्स ! हम तुम्हारे निर्वाचन से सन्तुष्ट है और आज ही अप कंधों से इस बोझ को हल्का करना चाहते है ।"

इतना कह कर महाराज ने सेवको को विवाह की तैयारियॉ करने के लिए आदेश दिया ।

आदेश मिलते ही लौहित्य दुर्ग दीप मालाओं से जगमगा उठा ।

शहनाईयां बजने लगीं ।

मंगलगान की ध्वनि गुँजित हो गई ।

राजकुमारी कमलाक्षी के कोमल शरीर को रत्नों से जकड दिया ।

बहुमूल्य आभूषणों से उसका सौन्दर्य द्विगुणित हो उठा ।

विवाह मंडप सजाया गया ।

महर्षि कात्यायन ने हर्ष पूर्वक उनका विवाह सस्कार कराया ।

परिवारिक सम्बन्धियो ने इस युगल जोडी को अपने आशीर्वाद से विभूषित किया ।

इसके उपरान्त रात्रि ने उन दोनो प्रेमियों को अपने आवरण में क लिया ।

३६
***

"कौन ? देवी सुनन्दा ।"

चन्द्रगुप्त ने पाटलिपुत्र के राजप्रासाद के एक कोने में देवी सुनन्दा कोदेखते हुए कहा ।

"हाॅ चन्द्र । मै ही अभागी अपनी हीनावस्था को भुलाने के लिए चली आई थी ।"

"ऐसे अपशब्द न कहो देवी । मै ही वह पापी हूॅ, जिसने आपके हृदय मे अशाति की ज्वाला जला डाली और आपको भटकने के लिए इस नश्वर संसार मे छोड़ दिया । काश मेरे करों द्वारा आपके पूज्य पिता जी का अमॅगल न होता—"

चन्द्रगुप्त ने भारी मन से दु:ख दर्शाते हुए कहा ।

"इसमें आपका क्या दोष है ? यह तो भाग्य का खेल है । जो मनुष्य किसी का अहित चाहता है भगवान उसका अहित पहले कर देते हैं ? पूज्य पिता जी ने मदांध होकर आपके राज्य को छीन कर

मृत्यु का आलिंगन कराना चाहा , परंतु उसका परिणाम विपरीत ही निकला । यदि वे ऐसा कदम न उठाते तो कुछ भी न बिगड़ता ।"

"आपके विचार बहुत ही उच्च है देवी फिर मी मैं अपने कुत्कृय की क्षमा माँगता हूँ ।"

"यदि आप क्षमा को ही जीवन का मूल समझ बैठे है तो मै वह सहर्ष दिए देती हू ।"

"सच--" चन्द्रगुप्त ने सुनन्दा के करों को पकड़ने का यत्न करते हुए कहा ।

"भावावेश में न आइए चन्द्र—"

सुनन्दा ने पीछे हटते हुए कहा—

मै राजकुमारी सुनन्दा नही अपितु योगिनी सुनन्दा हू ।

इस समय ऐसा लौकिक कृत्य न कीजिए, जिससे मेरे धर्म पर आघात पहुँचे ।"

"आघात-" चन्द्रगुप्त ने दोहराया—"देवी ! आपको मेरे प्रति मिथ्या भ्रम है । जब आपने मुझे क्षमा ही कर दिया है तो साम्राज्ञी पद के सम्भालने की हा कर दीजिए ।"

"जगतमाता के प्रति ऐसी बाते करना शोभा नहीं देता है चन्द्र ।"

योगिनी सुनन्दा के शब्दो को सुन कर सम्राट् चन्द्रगुप्त सोंच मे पड़ गये । इससे पूर्व उन्हे विश्वास था कि वे भेट होने पर योगिनी सुनन्दा को सम्राज्ञी पद सन्भालने के लिए विवश कर लेंगे ; परन्तु आज की बात ने उनकी आशाओं को जला कर भस्म कर डाला ।

अन्त मे सोच कर बोले—"देवी ! इस पद को सम्भालो या न सम्भालो, परन्तु साम्राज्य का भार आज से आप ही को उठाना होगा। मैं इन झन्झटों से अब दूर जाना चाहता हुँ ।"

"मैं दूसरे की वस्तु को नहीं सम्भाल सकती हूँ चन्द्र ।"

"दूसरे की, यह आप क्या कह रही हैं ?"

"यह सब कुछ तो आपके ही प्रभुत्व का है ।"

"यह कथन असत्य है । अब आप ही इसके स्वामी हैं और आपके ही द्वारा पाटलि-पुत्र की प्रजा का कल्याण हो सकता है चन्द्र ।"

"देवी ! साम्राज्य को त्याग रही है तो उसके रखने के लिए मै विवश नही करुँगा , परन्तु मेरी प्रेम की भीख•• ।"

"प्रेम के स्थान पर माता सुनन्दा वातसल्य की भीख दे सकती है ।'

सुनन्दा ने तनिक तेजस्वर मे कहा ।

चन्द्रगुप्त और कुछ न कह सका ।

शाति का वातावरण बढता गया ।

सध्या अपने परिधानों सहित सृष्टि के आसन पर सुशोभित हो गई ।

दीप दान जल उठे ।

चन्द्रगुप्त ने कक्ष की छत की ओर देखा । शायद वे सुनन्दा को आकर्षित करने के लिए कोई उपाय सोच रहे थे ? थोड़ी देर उप-रान्त वे बोले—

"देवी ! मेरी एक बात की मूर्खता की इतनी बड़ी सजा मत दो मै तुम्हारी प्रीति के बिना जीवित नही रह सकूँगा ।"

"सम्राट्र चन्द्रगुप्त की आंखों मे आसू एक वीर अबला का आभूषण ग्रहण कर रहा है । यदि ऐसा हो गया तो संसार भयकर प्रलय के चक्कर में फंस जायेगा—" सुनन्दा ने अश्रु पोंछते हुए कहा ।

"मेरी प्रीति अटूट है । उसका सम्बन्ध अब भी तुम्हारे साथ है लेकिन..."

"लेकिन क्या देवी ? शीघ्र कहिये ।"

"अब केवल उसका रूप बदल गया है । यदि मेरी प्रीति का बन्धन टूट गया होता तो मे तुम्हारे लिए ईरानी पत्थरो में क्यों ठोकरे खाती फिरती । विदेशी ललना हेलेन के आगे प्रीति का आंचल क्यो पसारती ? क्या इन सब बातों को प्रंपच की दृष्टि से देखते हो चन्द्र ?" सुनन्दा की जिह्वा कहती ही गई—"चन्द्र ! मैने दोनों देवियों

से तुम्हारे प्रेम की ग्रथि को जोड़ने के लिए अपने को अपमानित किया। तुम्हारे हित साधन के हेतु अपने पूज्य पिता के शत्रु शकटार और गुरुदेव चाणक्य से प्रेम का भाव दर्शाया । इस पर भी आप..."

"आपकी महत्ता और अगाध श्रद्धा के लिए मुक्त कंठ से धन्यवाद करता हूँ देवी, परंतु आप अपने मार्ग को त्याग कर मेरी बात को मान ले ।"

"ऐसा कदापि नही हो सकता चन्द्र । एक माता अपने पुत्र से कभी भी वैवाहिक सम्बध स्थापित नही करती ।"

"ये आपके मिथ्या विचार है, क्यो कि आप मेरी जमदायिनी नही है ।"

"जमदायिनी ही माता नही कहलाती है चन्द्र ।"

"तो फिर...।

"योगिनी भी मातृत्व का ही प्रेम दे सकती है । फिर आप मेरे इस प्रेम को क्यो ठुकराते है ?"

'इसलिए कि विवाह प्रेम सर्वांगोण नही है । मै तो जीवन पर्यन्त पत्नी प्रेम की ही भीख माँगता रहूँगा ।"

"वह भीख नहीं मिल सकेगी ।"

"तो यह धर्म का अन्याय होगा ।"

"मै इस अन्याय का सामना करुंगी ।"

"आप अपनी आकाँक्षाओं को कुचल रही है ।"

"इसलिए कि आकाक्षाओं की बलिवेदी पर जनहित का प्रासाद खडा हुआ है । उसकी रक्षा के लिए मेरे रक्त की एक एक बूंद लग जायेगी ।"

"यदि मैंने राज्य के समान जबरदस्ती आपको भी...।"

"इतने चरित्रहीन नही हो ।"

"एक सम्राट् के लिए सब कुछ..."

"बस बस, मैं और कुछ नही सुनना चाहती हूँ— योगिनी सुनंदा

ने बात को बीच मे से ही काटते हुए कहा—"अब आप अपने हठ को त्याग कर इस चचल मन को किसी दूसरी ओर लगाइये ?"

"देवी आप ही हट को त्याग दे ।"

"मेरे हट त्यागने से समाज मुझे ढोगी मानवी के नाम से पुकारेगा चन्द्र । इस प्रकार मै पाप की भागिनी नही बनना चाहती हूँ ।"

"देवी ! समाज सम्राट् के आगे सिर नही उठा सकता है "

"अ।पको यह बात शोभा नही देती राजन !"

"आपकी निंदा होगी ।"

"मैं प्रेम के लिए निदा को सहन कर सकता हूँ देवी !"

"देवी ! आप भी राजन शब्द से सम्बोधित कर रही है ।"

"इसके अतिरिक्त और कोई चारा नही है राजन ?"

मै किसी प्रकार भी आपकी प्रार्थना को मानने मे असमर्थ हूँ । हाँ इतना अवश्य है कि मै आपसे प्रीति सम्बन्ध रखुंगी । परन्तु वह सम्बन्ध मानस से हो सकेगा, मांसल से नही ।"

"इस प्रकार से आपकी गति न हो सकेगी देबी ।"

"इसकी आप चिन्ता न करें । मेरी गति योग बल से हो जाएगी ।"

"यदि आप मेरी इस प्रार्थना को ठुकरा रही है तो दूसरी तो मान लीजिएगा ।"

"सम्भव हुई तो मानने का प्रयत्न करुँगी राजन ! आप उसे कहने का कष्ट करें ।"

"आप ऐसे स्थान पर रहें जहाँ पर मैं नित्य प्रात: आपके दर्शन किया करूँ । यदि कभी कही जाना आवश्यक हो जाए तो वहाँ अनुचरों एवं अनुयाइओ को लेकर जाया करे ।"

"राजन ! योगिनी के लिए यह भी अनुचित है, परन्तु इसको मैं मान लेती हूँ । अब आपको भी मेरी एक बात माननी होगी ।"

"अवश्य मानी जाएगी देवी—"

चन्द्रगुप्त ने उल्लास पूर्ण स्वर मे कहा ।

"हेलेन लगभग चार वर्षों से आपकी स्मृति की घड़ियाँ गिन रही है । यदि आज्ञा हो तो मैं उन्हे विवाह के लिए..."

सुनन्दा देवी ने बात को अधूरी रख कर चन्द्रगुप्त के मुख की ओर देखा ।

"देवी ! बात तो आपकी पूर्णतया ठीक ही है ।

परंतु गुरुदेव की अनुमति से मै विवाह कर चुका हूँ । अब विदेशी नारी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध रखना तनिक उचित सा नही लगता । दूसरे शायद हेलेन इस बात को सुन कर स्वयं राजी न हो ।"

"राजन ! शास्त्रो के अनुसार सम्राट् कितनी ही शादियां करा सकता है ? हमारे पूर्वज महाराज दशरथ के भी तीन रानियाँ थी अब रही हेलेन की बात ! उसे मै जाकर तैयार कर लुँगी ।"

"देवी ! राज्य के निरीक्षणार्थ मुझे भी उसी ओर जाना है ; लेकिन मैं सीमा के बाहर न जा सकूँगा ।"

"ऐसा क्यो ?"

'गुरुदेव का यही आदेश है । मै उनकी आज्ञा का उलँघन नही कर सकता हूँ ।"

"अच्छा तो आप प्रस्थान का प्रबंध करें ।"

"बहुत अच्छा देवी । क्या आप...?"

'चुप क्यो हो गए राजन ? अवश्य पूछिए—'

सुनंदा ने उत्सुकता के साथ पूछा ।

"कल ही गुरुदेव ने मुझे बताया है कि महर्षि कात्यायन लौहित्य मे छद्मवेश मे निवास कर रहे हैं । आप भी वही से लौट कर आरही है । क्या आपने उन्हे वहाँ पर देखा था ?"

चन्द्रगुप्त के इस प्रश्न को सुन कर सुनदा कुछ घबड़ा सी गई । उसके सुन्दर और तेज पूर्ण मुख पर पसीने की बूंदे चमक आईं । उसने पसीने को पोछ कर और अपने आँतरीक भावों को छिपाते हुए कहा—

"राजन ! मुझ योगिनी से राजनैतिक विषय पर कुछ विवाद

मत कीजिए ।"

"जैसी आपकी इच्छा—"

चंद्रगुप्त इतना कह कर चुप हो गए और प्रस्थान की तैयारी करने लगे ।

उन्होंने जाने से पूर्व गुरुदेव से आज्ञा माँगी ।

गुरुदेव ने उन दोनों को विश्वासपात्र सैनिको के साथ बिदा किया ।

३७

★★★

चन्द्रगुप्त और उनकी सेना को भारत की सीमा पर छोड़ कर सुनदा अपनी सखी के साथ योगिनी वेश मे हेलेन के देश में पहुँची । कई दिन तक वे नगर मे भ्रमण करती रही, पर हेलेन के दर्शन न हो सके ।

एक दिन सुनंदा देवी नीची गर्दन करे एक वृक्ष के नीचे बैठी हुई माला फेर रही थी और उनकी सखी ईंधन की खोज मे जंगल में गई हुई थी ।

उसी समय एक नवयवती घोड़े पर सवार होकर वहाँ पर पहुँची । एक भारतीय योगिनी को पेढ के नीचे बैठी हुई देख कर हेलेन ने घोडे से उतर कर उसके पास जाकर पूछा ।

"आप कौन है ?"

सुनंदा ने गरदन ऊंची करके देखा । हेलेन खड़ी हुई उनसे पूछ रही है ।

उन्हें अपनी आँखो पर विश्वास नही हुआ । उंहोंने

अपनी आँखों को मल कर देखा । जब योगिनी सुनंदा को यह विश्वास हो गया तो उंहोंने दोहराया—

"राजकुमारी हेलेन !"

राजकुमारी हेलेन योगिनी के मुख से अपना नाम सुन कर आश्चर्य में पड़ गईं । उन्होंने गौर से योगिनी के चेहरे की ओर देखा । चार वर्ष की घटना कुछ २......मानस पटल पर उतरती हुई दिखाई दी । कुछ देर तक हेंलेन सोचती रहीं । थोडी देर बाद उनके चेहरे पर मुस्कान खिल गई । अब वे योगिनी को पहचान गईं थीं ।

उहोंने तभी पूछा—

"अब कैसे कष्ट किया आपने ?"

"कष्ट नहीं हेलेन, हमारा तो काम हो जन हित सेवा करना है इसी उद्देश्य के हेतु यहाँ पर पधारी हूँ ।"

"बहुत दिनो के बाद यहॉ की जनता का ध्यान आया देवी ।"

"राजकुमारी हेलेन ! भारत की राजनैतिक उथल-पुथलो ने आने ही नही दिया । आपके सम्राट् अलिक-सुन्दर और मेरे पूज्य पिता जी स्वर्गारोहण कर गए । अब आपके चिरपरिचित साथी चंद्रगुप्त ही बंग से लेकर हाल्म तक के सम्राट् हैं ।"

"यह समाचार तो हमे पहले ही मिल चुका है देवी । हमें चंद्रगप्त की कामयाबी पर फर्क है । हम चाहते थे कि उनको खुद बधाई देते, पर हमारे वादशाह की मौत के बाद यहाँ पर सिपहसालारों में खूब चलती रही, जिसके कारण हम अपने जाने हुए हिन्दुस्तानियों के साथ फर्ज को कायम न रख सके ।"

"अब तो आपके पिता ही यहॉ के मालिक है ।"

"यह तो ठीक है देवी ! परतु कुछ गड़बड़ चलती ही रहती है ।"

"अब आप इस सीमा पर कब तक रहेगी—"

सुनन्दा ने पूछा ।

"जब तक पिता जी की इच्छा होगी देवी ।"

हेलैन ने जवाब देते हुए पूछा—

"क्या आपके शहन्शाह से भेट हो सकती है देवी ।"

"क्यो नहीं ?" वे निरीक्षण के हेतु आजकल भारत की सीमा पर ही हैं ।

"इससे पूर्व तो वे इधर आए नही ।"

"आते कैसे राजकुमारी ? इन्ही दिनों मे अपने गुरुदेव की सहायता से इतने विशाल साम्राज्य की बागडोर सम्भाली है । शत्रुओं ने इनको भी चैन से नही रहने दिया । अभी थोडे दिनो से कुछ शाति की साँसे ले सके है । अब अवसर उचित समझ कर इधर चले आए है ।"

"आने की सूचना तो पहले भेज सकते थे ।"

"भेजते किसेके द्वारा ? सभी तो यहाँ आते हुए घबड़ाते है ।"

राजकुमारी हेलेन योगिनी सुनन्दा की चातूर्य पूर्ण बातों को सुन कर मुस्कराई और उसी मुद्रा मे पूछा—

"अब आपके शहन्शाह क्या चाहते हैं ?"

"आपके दर्शन की अनुमति चाहते है ।"

"वे यहां पर आ सकते है ।"

"असम्भव है राजकुमारी ।"

"क्यों ?"

"बन्दी होने का डर है ।"

"फिर मुलाकात कैसे हो मकती है ?"

"आप सैर के बहाने उधर ही चलें ।"

"सुना है उनकी शादी हो गई है, फिर वह मुलाकात क्यों करना चाहते है ?"

"यह बात तो ठीक है देवी ; लेकिन वह विवश थे ।"

"इसका मतलब..."

"यही कि गुरुदेव की आज्ञा के कारण उन्हें महाराज पौरुव की एक मात्र कन्या दुर्धरा से विवाह सम्बन्ध स्थापित करने पड़े । उन

दोनों के प्रणय का प्रतीक बिन्दुसार किल्कारियां मारता फिरता है ।"

हेलेन शांत भाव से सुनती रही ।

सुनन्दा कहती गई– "राजकुमारी ! विश्वास कीजिए । यह विवाह राजनैतिक दाव पेचो के कारण हुआ था ।"

"दांव पेंच–" हेलेन ने दोहराया ।

"हा राजकुमारी ! दुर्धरा पिता की एकमात्र उत्तराधिकारिणी थी । उनके राज्य की सहायता से ही चन्द्रगुप्त अपने साम्राज्य को इतना फैलासके है ।"

"यह तो ठीक है देवी ; परन्तु अब मझ से क्यों मिलना चाहते है ?"

"प्रेम और उपकार दोनो के भार को उतारने के लिए ।"

"तुम्हारी बात का मतलब हम समझ गये है देवी–" हेलेन ने कुछ खिन्नास्थवा में कहा–"यह नामुकिन है ।"

"क्यो ?"

"एक राजा की दो रानियाँ कैसे हो सकती है ?"

"राजकुमारी । भारत में इस प्रथा का प्रचलन है ।"

"तो आपभी उनके साथ शादी करेंगी ।"

"यह आप क्या कह रहीं है राजकुमारी ? भिक्षुणी कभी भी साम्राज्ञी नही बन सकती है ।"

"आपके वालिद के हत्यारे यही हैं, फिर भी आप इनके हित चिंतन मे ही लगी रहती है देवी ।"

"युद्ध मे एक नायक की क्षति अवश्य होती है राजकुमारी । फिर दुःख करके ही क्या करु ?"

"आपका दिल कभी भी मल्का बनने को नही करता ?"

"कभी भी नही ।"

"क्यों ?"

"इस लिए कि मैं अब राज्यलिप्सा से बहुत दूर जा चुकी हू

"फिर मुझे क्यो कीचड़ में फसा रही है ?"

"जिसे आप कीचड़ समझती है राजकुमारी, वह स्वर्ग की सीढी है।"

"फिर आप क्यो नही चढती ?"

"सन्यास का व्रत न लिया होता तो मैं अवश्य इस सीढी पर चढ़ती ।"

"इस लिए आप सलाह दे रही है ।"

"हां राजकुमारी ! हम भारतीयों के यहां आपको किसी प्रकार का कष्ट नही मिलेगा ? आप के रहने के लिए अलग प्रासाद होगा ।

"आप बहुत कहती है तो मै आपके साथ वालिद साहब से इजाजत लेकर चलती हूँ । क्या आप घुड़सवारी करना जानती है ।"

"बहुत अच्छी तरह राजकुमारी ।"

इतने मे सुनन्दा की सखी वहां पर पहुँच गई । उसे देख कर हेलेन ने पूछा—"ये कौन है ।"

"मेरी प्रिय साथिन—" सुनन्दा ने मुस्करा कर उत्तर दिया ।

देवी से आज्ञा लेकर हेलेन घोडे पर सवार हो कर वालिद साहब से अनुमति लेने चली गई ।

एक घटे के उपरान्त वह तीन घोड़ों और कुछ अनुचरों के साथ उस स्थान पर आई जहां पर योगिनी सुनन्दा अपनी सखी के साथ बैठी हुई इन्तजार कर रही थी ।

अनुचरों को वही से बिदा कर दिया गया ।

वे तीनों घोडों पर सवार होकर भारतीय सीमा की ओर बढीं ।

उनके घोड़े द्रुत गति से बढ रहे थे ।

हेलेन के विदेशी हृदय में भारतीय आत्मा के दर्शन की हिलोरे उठ रही थीं ।

वे अपने ही मन में चन्द्रगुप्त के विषय मे सोच रही थीं ।

उनका ईरानी घोड़ा हिनहिनाता हुआ आगे बढ़ रहा था ।

तभी सुनन्दा ने राजकमारी हेलेन का ध्यान भंग किया ।

राजकुमारी हेलेन ने सुनन्दा की ओर देखा ।

वे कुछ दूरी पर शिविरों की ओर सकेत कर रही थी ।

"वहाँ पर कौन है ?" हेलेन ने पूछा ।

"चन्द्रगुप्त !"

"सम्राट्र चन्द्रगुप्त—" हेलेन ने दोहराया ।

अब उनके घोड़े शिविरों के समीप पहुँच चुके थे ।

घोड़ो की टापों की आवाज सुन कर स्वय साम्रट्र चन्द्रगुप्त शिविर से बाहर निकल आए थे ।

उन्होने देवी सुनन्दा के साथ राजकुमारी हेलेन को देखा ।

उसका सौन्दर्य पहले से द्विगुणित हो गया था ।

उन्होने आगे बड़ कर उनका स्वागत किया और सम्मान के साथ राजकुमारी हेलेन को अपने शिविर मे लेगए ।

राजकुमारी सुनन्दा अवसर पाकर वहा से ही अपनी सखी के साथ दूसरे शिविर मे चली गई ।

महाराज के अंग रक्षक भी बाहर निकल गए ।

इस प्रकार इन दोनों के सिवा शिविर मे कोई न रहा ।

अवसर को उपयुक्त समझ कर चन्द्रगुप्त ने कहा—

"आज ! आपके दर्शनों से मै बहुत खुश हूँ । आशा है कि आप सकुशल रही होंगी ।"

"आपकी इनायत से खुदा की मेहर रही । मैं अब आपकी कामयाबी पर मुबारकबाद देती हूँ ।"

"आपको भी—" चन्द्रगुप्त ने कहा ।

"किसे मालूम था कि इतनी जल्दी आप तरक्की कर जाएँगे ?"

"यह सब तो आपकी महरबानी है ।"

"अच्छा ! तो कैसे याद फरमाया ?"

"इसके लिए तो योगिनी जी ने आपको बता ही दिया होगा ।"

"आप खुद कहते हुए क्यों शरमाते हैं ?"

"शरमाने की बात नहीं है हेलेन । मैं यूनानी सभ्यता से पूर्णतया परिचित नहीं था इसलिए ऐसी बात अब तक आपसे मैं न कह सका था ।"

"अब कह दीजिए..." हेलेन ने बड़ी-बड़ी आँखों से सम्राट् के सुन्दर चेहरे को देखते हुए कहा ।

"अब कैसे चूक सकता हूँ देवी ? भगवान ने मेरे ही कारण आप को अविवाहित रखा है । अब चाहता हूँ कि आप अब साम्राज्ञी पद को सम्भालें । इससे मैं आपके कारागार से मुक्त करने के उपकार से मुक्त हो जाउँगा ।"

"उस समय आपका न कहना ही अच्छा था, क्योंकि उस समय मेरी आयु विवाह लायक न थी; लेकिन अब शादी होना मुश्किल है । हेलेन ने कहा ।

"क्यों ?"

"हमारे यहाँ दो शादियों का रिवाज नहीं है । दूसरे इस मामले में सियासी रुकावट भी है । इसके लिए वालिद साहब की इजाजत भी लेनी होगी ।"

राजकुमारी विवाह को सियासी प्रश्न बना देना तो उचित नहीं ।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि विवाह आत्मीय सम्बन्ध है ।"

इसमें तो पहले आप कीं स्वीकृति की आवश्यकता है । इसके बाद में किसी प्रकार आपके वालिद साहब की इजाजत लेली जायेगी । मैं समझता हूँ कि आप पहली शादी के कारण कुछ झिझक रही हैं ।"

"आप ठीक समझे । हमारे यहाँ पहली औरत के होते हुए दूसरी शादी करना मकरूह कहलाती है शहंशाह ।"

"राजकुमारी ! यह नियम राजा महाराजाओं के लिए भारत में नहीं है ।"

"क्या आपस में कभी झगडा नही होता ?"

"आपस मे मिलन भी कठिनता से होता है देवी । फिर झगड़ा कैसे हो सकता है ? अब आप अपनी अनुमति दे दीजिएगा ।"

'मैं तैयार हूँ ।"

राजकुमारी के इन शब्दों ने चन्द्रगुप्त को प्रसन्न कर दिया । उस ने हेलेन को आलिंगन बद्ध करते हुए कहा—

"आपकी स्वीकृति से मेरा जीवन सफल हो गया हेलेन ।

"लेकिन दूसरा मुश्किल है ।"

"क्यों ।"

वे अलिक-सुन्दर के जीते हुए देशो को चाहते है ।"

"कौन ? आपके वालिद साहब ।"

"हा ?"

"यह अब नामुमकिन है हेलेन । अब तो आपके वालिद साहब को यह विचार त्यागने पड़ेगे अन्यथा उनका भी अमंगल हो सकता है ।

"वे मेरे कहने से नही मानेंगे ।"

"तब हमारा उनका संघर्ष होगा । वह संघर्ष हमारे आपके आत्मिय सम्बन्ध में बाधक नही होगा, राजकुमारी ।"

"मै समझाने का प्रयत्न करुँगी ।"—इतना कह कर हेलेन ने जाने की अनुमति मांगी ।

चन्द्रगुप्त ने प्रसन्नता पूर्वक राजकुमारी हेलेन को भारतीय सीमा पर से बिदा किया ।

राजकुमारी हेलेन ने युक्ति पूर्वक अपने पिता के समक्ष चन्द्रगुप्त के विशाल साम्राज्य की बाबत बताया अर अपने प्रेम के विचार माता द्वारा प्रगट कराये । चन्द्रगुप्त के सम्राट् हो जाने की खबर से सेल्यूकस बहुत खुश हुआ उसने पारस्परिक सम्बन्धों को दृढ करने के अभिप्रायः से हेलेन का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ करने का निश्चय किया ।

सेल्यूकस का निमन्त्रण पाकर चन्द्रगुप्त अपनी विशाल सेना के साथ

राजकुमारी हेलेन से विवाह करने के लिए पहुँचे ।

सेल्यूकस ने अपनी हैसियत के मुताबिक काफी धन, दहेज में दिया। चन्द्रगुप्त नवपत्नी हेलेन के साथ पाटिलपुत्र मे पधारे ।

सुनन्दा ने दुर्धरा से हेलेन का प्रेमपूर्वक परिचय कराया । दोनों महारानियाँ प्रसन्नता पूर्वक पाटिलपुत्र के दुर्ग मे रहने लगी ।

समय व्यतीत होता रहा ।

चन्द्रगुप्त का साम्राज्य उन्नति करता रहा ।

दोनों महारानियों ने यथा समय दो-दो पुत्र और एक एक पुत्री को जन्म दिया ।

छैः बच्चों को पाकर चन्द्रगूप्त बहुत प्रसन्न हुए ।

उनको भी गुरुदेव की संरक्षकता में ही छोड़ा गया । 'बाबा' शब्द की मधुर ध्वनि से काला ब्राह्मण आत्मविभोर हो उठता था ।

३८

***

लौहित्य नगर में नन्द सेना एकत्रित हो गई।

उनकी सख्या लगभग एक लक्ष थी।

उनके चेहरे उल्लास से दमक रहे थे।

उनकी भुजायें प्रतिशोध लेने के लिए बेचैन थीं।

तभी उन्हें प्रस्थान की आज्ञा मिली।

युद्ध के विगुल बज उठे—

महासेनापति भद्रशाल उस विशाल मेना को लेकर आगे बढे।

प्रथम उनका उद्देश्य वग पर अपना आधिपत्य जमाना था।

उक्त स्थान पर पहुँचकर घमासान युद्ध हुआ।

मौर्य सेना को इस युद्ध की स्वप्न मे भी आशा न थी। उन्होंने उठकर मुकाबला किया ; परन्तु इतनी विशाल सेना के समक्ष वे टिक न सके। वंग का मस्तक नंदवश के समक्ष झुक गया। वहां के दुर्ग पर उनकी पताका फहरा दी गई। इसके बाद लौहित्य मे पहुँचकर महर्षि कात्यायन ने अपने सधि-विग्रहिक के द्वारा जामल देश को भी अपने आधीन कर लिया।

कलिग राज्य में अपना आधिपत्य जमाने के अभिप्राय: से महर्षि कात्यायन ने भद्रशाल जी को राजदूत बनाकर भेजा।

कलिग की राजधानी में भद्रशाल का महाराज महाबेल ने खूब स्वागत किया और उन्हें सम्मान के साथ अपने अन्त:पुर में ले गये। वहाँ पर जलपान के उपरान्त महाराज ने कहा—"महासेनापति। हमें

यह सुनकर बडी खुशी हुई कि महर्षि कात्यायन ने अपनी पटुता के बल पर वंग को पराजित कर दिया । अब उनके भविष्य के लिए क्या विचार है, सो प्रगट करे ?"

भद्रशाल ने महाराज के विचारों से अवगत होकर कहा—

"देव ! यह सब आपकी ही कृपा का फल है । वैसे अपने पास इस समय सवालाख सेना है । इससे हम पाटिलपुत्र को विजय नही कर सकते हैं । इसके लिए हमें दुमुखी सेना की आवश्कयता है । हम तो भगवान से यही प्रार्थना कर रहे हैं कि वह हमारे महाराज के प्रण को पूरा करे ।"

"क्या प्रण है उनका ?" महाराज ने पूछा ।

"उनका प्रण है कि वे जब तक भूतपूर्व महाराज धननन्द की मृत्यु का प्रतिशोध और उनका पूर्ण साम्राज्य नही ले लेगें तब तक शान्ति से नही बैठेगे । इसी उद्देश्य को लेकर सहायतार्थ आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ ।

"महाबलाधिकृत । क्या आप हमारी और अपनी शक्ति के द्वारा पाटलि-पुत्र को विजित कर सकते हैं ?"

"मैं तो ऐसा ही समझता हूँ देव ।"

"इस सहायता के उपलक्ष मे हमारा क्या हित हो सकेगा ? इस पर अपने विचार प्रगट कीजिए ।"

"आपका हित स्पष्ट है महाराज ।"

"वह क्या ?"

"दक्षिणात्य शत्रुओं को जीतने में हमारी ओर से सहायता..."

"हम आपको अपनी पचास सहस्र सेना दे सकते हैं महाबलाधिकृत ।"

"इस सहायता के लिए मैं महाराज सबलनन्द, महर्षि कात्यायन तथा अपनी ओर से धन्यवाद करता हूँ ।"

"अब हमारी विजय निश्चित है देव ।"

"ईश्वर आपकी मनोकामना शीघ्र पूर्ण करें ।"

इस वार्ता के उपरान्त कलिंग के सन्धिविग्रहिक ने भद्रशाल की सेवा मे प्राभृतक भेंट स्वरूप दी ।

उन्होंने उसका स्वागत किया और वापस लौटने की अनुमति मांगी, महाराज ने उन्हें २१ वस्त्रों, अश्व तथा ५०० दीनारों की भेंट के साथ सहर्ष बिदा किया ।

भद्रशाल प्रसन्नता के साथ लौहित्य पहुचे और बिना विश्राम किए ही यह सुखद समाचार महर्षि कात्यायन तथा सब को सुनाया । उसे सुन कर सबके सब बहुत प्रसन्न हुए ।

तभी महाष कात्यायन ने कहा—

"सेनापति ! जॉगल-नरेश ने भी २५ सहस्र सेना से सहायता कर ने का वचन दिया है । अब इन दोनों की सहायता से वह दिन दूर नही जबकि पाटलि-पुत्र पर हमारी ध्वजा फहराएगी मौर्य-कुमार और काले ब्राह्मण और देश-द्रोही शकटार को अपने कर्मो की सजा मिलेगी

"आपके विचारों से मैं भी सहमत हूँ । ऐसा होने पर ही लोहित्य नरेश के हृदय में शान्ति आ सकती है; अन्यथा वे बेचारे वेदना की ज्वाला में ही झुलसते रहेंगे ।"

"अभी से यूद्ध की तैयारियाँ आरम्भ करदो ।"

"जो आज्ञा—" कह कर सोनपति भद्रशाल सेन्य निरीक्षण के लिए चले गए ।

लौहित्य देश में उस रात घी के दीपक जलाए गए । बंग विजय की खूशी मे सारा नगर डूब गया ।

विजय के राग वाद्यो की ध्वनि में गूंज उठे ।

लौहित्य-नरेश ने सब कुछ सुना और भगवान की ओर हाथ जोड़ शान्त भाव से शून्य आकाश की ओर देखा ।

वे शायद ऐसा करके नव-नंद वश सम्राट्र धननंद की आत्मा की शाँति पहुँचाना चाहते हो ।

३९

***

"महाराज–।"

द्वार रक्षक ने राजसी अभिवादन के उपरान्त कहा ।

चन्द्रगुप्त ने सिर उठा कर द्वार रक्षक को खड़े हुए देखा और पूछा ।

"कैसे आना हुआ ?"

"महाराज गुरुदेव आप से भेंट करना चाहते हैं ।"

"उन्हे आज्ञा की क्या आवश्वकता थी द्वार रक्षक ? वे तो किसी समय भी आ सकते हैं ?"

द्वार रक्षक सम्राट् चन्द्रगुप्त की बातें सुन कर शात रहा और आज्ञा के लिए खड़ा रह गया ।

"उन्हें सम्मान पूर्वक यहाँ ले आओ ।"

द्वार रक्षक आज्ञा पाकर उन्हें ले आने के लिए चला गया ।

थोड़ी देर मे ही गुरुदेव ने चन्द्रगुप्त के कक्ष में प्रवेश किया ।

चन्द्रगुप्त ने उठ कर उन्हे अभिवादन किया और रत्नजटित सिंहासन पर बैठने के लिए अनुरोध किया ।

"वृषल ! यह समय सत्कार का नहीं है । इस समय मैं विशेष मंत्रणा के लिए पधारा हूँ ।"

"आज्ञा कीजिए गुरुदेव ।"

"वत्स ! अब युद्ध का समय आगया है ।"

"युद्ध का ! यह आप क्या कह रहे हैं ?"

"हां वत्स ! वगपराभव से हमें जागृत हो जाना चाहिए । शत्रु किसी भी समय इधर झांकने का प्रयत्न करेगा ।"

"मैं आपकी आज्ञा के पालन के लिए सदैव तैयार हूँ गुरुदेव ।"

"ऐसा तो मैं समझता आया हूँ वृषल । आज चर-विभाग से मंत्रणा करने के उपरान्त भी मेरा मन अशांत ही है । मुझे यह विषय कुछ कठिन सा प्रतीत हो रहा है । यदि महर्षि कात्यायन अवकाश के लिए कश्मीर न चले गये होते तो अपनी विजय इतनी सुगमता से नहीं हो सकती थी ।"

"मै सहमत हूँ गुरुदेव ।"

"वृषल ! महर्षि धननन्द के पराजय के एक माह उपरान्त संयासी के वेश मे यहां पर पधारे और सब समाचारों को पाकर वे सीधे उसी वेश में लौहित्य चले गये थे । जिस की सूचना मुझे कुछ दिन पूर्व ही मिली थी । काश ! मैं उन्हें यही पर बन्दी बना पाता तो आज किसी प्रकार का बखेडा मेरे समुख नही आता ।"

"देव आपको इतनी चिन्ता की क्या आवश्यकता है । वे हमारी शक्ति के लिए सैन्य कहां से पायेंगे ?"

"यही तो तुम्हारी भूल है वृषल ! उन्होंने वहाँ पर पहुंच कर लौहित्य नरेश की सहायता से बहुत सी सेना एकत्रित करली है ।"

"आपने कैसे जाना ?"

"यदि इनकी शक्ति प्रबल न हुई होती तो वे वंग की ओर ध्यान न देते । अब उन्होने सोते हुए शेर को छेड़ा है । इसका फल शीघ्र ही मिल जायेगा वृषल ।"

"किन को मिल जायेगा गुरुदेव ?"

"लौहित्य नरेश और उसके साथियों को जो कि तुम्हें पराजित करने का स्वप्न देख रहे हैं ।"

"इस से तो महर्षि कात्यायन जी के अमंगल होने का भी भय है गुरुदेव ।"

"सोचना तो इसी बात का है वृषल । मैं ऐसे त्यागी, परोपकारी, व्याकरणविद् और स्वामिभक्त का अमँगल नहीं सोच सकता । मैं तो

से तुम्हारा हितैषी बनाना चाहता हूँ ।"
"वे हितैषी कैसे बन सकेंगे गुरुदेव ?"
"महामत्री के रुप मे ।"
'इस पद के लिए उनकी स्वीकृति मिल जायेगी ।"
"वह देनी होगी ।"
चाणक्य ने भृकुटि में बल डाल कर कहा ।
"इसके लिए उक्ति आप ही सोच सकते है गुरुदेव ।"
"यह तो मै पहले से ही जानता था वृषल ।"
"अब मै यहाँ से जाता हूँ ।"
इतना कह कर गुरुदेव चाणक्य ने अपनी कुटी की ओर प्रस्थान किया ।
जिस समय वे कुटी मे पहुँचे । उस समय उनका प्रिय शिष्य कुशासन पर बैठा हुआ उनकी राह देख रहा था ।
उसने गुरुदेव को आता हुआ देख कर यथोचित अभिवादन किया और गुरु के मुखारविन्द से आदेश सुनने के लिए शात खड़ा रहा ।
चाणक्य ने उसे गौर से देखते हुए पूछा— ।
"चन्दनदास जी को लिवा लाये वत्स ।"
"हाँ गुरुदेव ! वे कुटी के समीप ही बैठे हुए आपके बुलाने की राह देख रहे हैं ।
"कितनी देर से आये हुए है ?"
"थोड़ी ही देर हुई है गुरुदेव ।"
"अच्छा तो सेठजी को यहाँ भेज दो ।"
"जो आज्ञा—"
कह कर शिष्य सेठजी को बुलाने के लिए कुटी के बाहर की ओर चला गया ।
थोड़ी देर उपरान्त सेठजी ने चाणक्य के समक्ष पहुँचते हुए कहा ।
"नमकास्र गृरुदेव ।"

"आयुष्मान भव !"

चाणक्य के मुख से निकला ।

गुरुदेव का आर्शीवाद पाकर सेठजी ने पूछा– ।

"मेरे लिए क्या आज्ञा है गरुदेव ?"

"सेठजी ! कुछ राजकीय कार्य के कारण आप को कष्ट दिया गया है—।

चाणक्य ने चन्दनदास के मुख के भावों को पढ़ते हुए कहा ।

"आज्ञा कीजिए ।

"क्या भूतपूर्व महामन्त्री जी आपसे बहुत प्रसन्न रहते थे ?"

चाणक्य ने पूछा—

"गुरुदेव ! आपकी महती कृपा से मै जगत-सेठ बना चला आरहा हूँ । नव-नंद साम्राज्य मे भी मुझे यही पद प्राप्त था । आपके समान उनकी भी मेरे पर अनुकम्पा रही है ।"

"तब तो आपको इस बात का अवश्य पता होगा कि काश्मीर यात्रा के समय उन्होंने अपना परिवार कहाॅ पर छोड़ा था ?"

"यह तो जगत प्रसिद्ध है कि उनका परिवार मेरी सरक्षकता मे मेरे घर पर रहा ।"

"ठीक, बिल्कुल ठीक ! सेठ जी राजधानी पर मौर्य-कुमार का अधिकार हो जाने पर भी वह परिवार आपकी सरक्षकता मे रहा होगा ।'

"ऐसा ही था गुरुदेव ।"

"तब वह अब भी आपके यहाँ ही होगा ।"

"नही कृपानिध ! वह अब मेरे पास नहीं है ।"

"फिर कहाॅ चला गया ?"

"लौहित्य ।,,

"किसके साथ ?"

"मेरे अनचरों के साथ ।"

"किसकी आज्ञा से ?"

गुरुदेव के इस प्रश्न को सुन कर सेठ जी का हृदय भावी आशंका से कॉप उठा । उन्होने अपने को सम्भालते हुए कहा—

"मेरी अनभिज्ञता से ऐसा हो गया ।"

"मुझे सूचित क्यों नही किया गया ?"

"इसका अनुभव न था ।"

"क्या आपको यह भी अनुभव नही था कि यह राजविद्रोह का कार्य है ?"

"वे मौर्य कुमार के अधिकार से पहले ही जा चुके थे । इस पर राजविद्रोह का आरोप कैसा ? फिर मेरे जैसा सज्जन व्यक्ति ऐसे कुकृत्य कैसे कर सकता है ?"

"सेठ जी ! मुझे आपकी सज्जनता से कोई प्रयोजन नही है ? जगत सेठ के नाते इस राज्य के सेवक हैं । अतः राजविद्रोह आपकी शान के विरुद्ध है । यदि महर्षि कात्यायन इस साम्राज्य में आजाते तो लाखो मनुष्यो का नरसंहार होने से बच जाता; अब वह भार आपके कन्धों पर आ पड़ा है ।"

"इसके भागी आप है ।"

"कैसे ?"

"क्षमा प्रदान करें गुरुदेव । आपको उस समय आज्ञा देनी चाहिए थी, जिस समय महर्षि का परिवार निडर मेरे घर पर रहता था । अब झूठा आरोप मेरे पर लगाना शोभा नहीं देता आर्य ।"

"मेरी भूल आपके राज्य विद्रोह के नामसे नहीं धो सकती सेठ जी ।

"आप साम्राज्याधिकारी के नाते मुझ पर कोई भी दोष लगा सकते है । मै सत्य कहकर अपने धर्म का पालन कर चुका हूँ । आप न्याय सँगत दँड दे दीजिएगा ।"

"आप ! महर्षि के अहित के लिए तैयार नहीं ।"

"कदापि नहीं आर्य ! द्रोह किसी भी जीवन में नहीं कर सकुँगा ?"

"अभी समय है, सोचकर उत्तर दीजिए ।"

"सोचकर ही कह रहा हूँ ।"

"आपका निश्चय अटल है सेठ जी ।"

"आर्य ! आप इतनी छोटी सी भूल को इतना भयंकर रूप क्यों दे रहे हैं ? मैंने तो मित्रद्रोह के पाप से बचने के लिए ही यह सब कुछ किया था । सो उसके लिए क्षमा की भीख माँग रहा हूँ ।"

"सेठ जी ! इस भूल का महत्व किसी ऐसे षडयन्त्र से कम नही जोकि किसी के राज्य को पलटने के लिए रचा जाता हो ? "

"देव ! मुझे स्वप्न में भी इसकी आशा न थी कि मित्र की रक्षा करना भी षडयन्त्र बन सकता है । यदि आप मुझे इसके लिए दण्ड का भागी समझते हैं तो मैं दण्ड पाने के लिए सहर्ष तैयार हूँ; परंतु आप महर्षि जी के परिवार को नहीं पा सकते ।"

"सेठ जी ! होश की बातें कीजिए । जानते नही मेरा नाम काला ब्राह्मण है । मैं जिसके अहित के लिए तुल जाता हूँ, उसे मिट्टी मे मिला कर सांस लेता हूँ । अच्छे-अच्छे सम्राटों को मेरे सामने सिर उठाने का साहस नही होता है लेकिन आप दर्प-पूर्ण विचारों को प्रगट करके मेरी क्रोधाग्नि को प्रज्वलित करना चाहते है ।"

इतना कहते ही चाणक्य का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा । उनके नेत्रों से रक्त की चिगारियाँ निकलने लगीं ।

उन्होंने क्रोधावेश में पुनः कहा—

"सेठ जी ! वृषल कात्यायन जैसे सैकड़ों शत्रुओं को क्षण भर में पददलित कर डालने में सक्षम है । फिर आपने ऐसे वचन क्या सोच कर निकाले हैं ?"

"आर्य ! मैंने ऐसे कोई शब्द नही कहे; जिससे आपका अपमान हो या अन्तस्थल में जाकर चुभें । मैं तो आपका सेवक हूँ । सेवक कभी भी स्वामी के समक्ष सिर नही उठा सकता है ।"

"ऐसे राजद्रोही सेवकों से साम्राज्य को डर है ।"

"यदि इतना विशाल साम्राज्य भी हमसे भय खा सकता है तो वह शीघ्र ही नष्ट हो सकता है देव ।"

"इससे प्रतीत है कि आप युद्ध के लिए तैयार हैं सेठ जी । आप नहीं समझते कि मैं कौन हूँ ?"

"बहुत अच्छी तरह । कल के पथ का भिखारी और आज का निर्दोष घातक । जो कुछ इस शरीर का करना चा होते वह कर सकते हो आर्य । मुझ जैसा वणिकपुत्र, आप जैसों की गीदड़ भभकियों में आने वाला नही ।"

"इतना दुस्साहस !"

"यह मेरा नही आपका है । जो व्यक्ति कल तक हमारे विद्यालय में तुच्छ अध्यापक पद पर रहा हो, वही आज अपनी कुटिलता के कारण महा-मंत्री बन बैठा हे । इसी कारण से उसका मन आकाश की ओर देखता है । आर्य मैं आप जैसे आतातताईओं के द्वारा उस पवित्र आत्मा की रक्षार्थ प्राण देना भी कीर्तिकर समझता हूँ ।"

"आपका मित्र प्रेम और साहस धन्य है ; परन्तु यह भिखारी एक राजद्रोही को बिना दण्ड दिए नही रह सकता है ।"

"फिर दण्ड की आज्ञा कीजिए ।"

"आज से आपका सर्वस्व हमारे निरीक्षण मे होगा ।"

"बस... ।"

भयंकर अट्टहास उस अर्ध टूटी झोपड़ी में गूँज उठा ।

चाणक्य ने कहा—

"अभी वास्तविक दण्ड देना तो शेष ही है ।"

"वह भी दीजिए आर्य ।"

"आपके साथ ही आपका सारा परिवार कारागार में रहेगा ।"

"दण्ड दे दिया गया ।"

"नहीं ! यह तो मेरा सुझाव मात्र ही है । इसका निर्णय तो चन्द्र गुप्त कर सकेंगे ।"

"आर्य ! मैं आपके अधिकार में हूँ । मेरा निर्णय आप करें या आपके सम्राट् करें । मैं तो अब दंड भोगने के लिए ही बैठा हूँ। मैंने महर्षि जी के परिवार की जान बूझ कर रक्षा और पोषण किया था ।"

"फिर उसका दण्ड का भोग लीजिए ।"

"मित्र के लिए प्राण देना मे वह भी मेरे लिए सुख की शैया है ।"

"अरे कोई है—"

चाणक्य ने तेज स्वर में कहा । फिर चन्दनदास की ओर देख कर कहने लगे—"

"आपकी उग्रता को देख कर मुझे ही दण्ड की आज्ञा सुनानी पड़ रही है ।"

तभी प्रहरी ने आकर प्रवेश करके अभिवादन किया ।

प्रहरी को देख चाणक्य ने कहा–।

"दण्डपायशाधिकरण को भेज दो ।"

"जो आज्ञा—"

कह कर प्रतिहारी आदेश के पालन हेतु वहाँ से चला गया ।

कुछ ही देर के उपरान्त दडपायशाधिकरण ने वहाँ पर पहुँच कर आर्य की जय जयकार की और आज्ञा के सुनने के लिए एक ओर खड़ा हो गया ।

चाणक्य उसे देख कर बोले—।

"सेठजी ! तुम्हारे सामने बिराजमान हैं । इन का परिवार भी यथा शीघ्र ही यहाँ पर आ जाता है । इस के उपरान्न इन्हें कारागार में पूर्ण प्रबन्ध के साथ रखना होगा । पर ध्यान रहे कि इन्हे किसी बात का कष्ट न होने पाये । वहाँ पर इनकी इच्छित सामग्री को एकत्रित कर देना । इनका सारा व्यापार आज से राजकीय निरीक्षण में रहेगा । इसके उपरान्त इनका निर्णय सम्राट् की आज्ञा से होगा ।

"जो आज्ञा आर्य–"

सेठजी के मुख से निकला और वे स्वयं ही दंडपायशाधिकरण के

साथ चले गए ।

सेठ चन्दनदास के जाने के उपरान्त चाणक्य के मुख से निकला । तुम वास्तव मे इस युग के रत्न हो । तुमने तुच्छ मैत्री भाव के पीछे धन और प्राण का बलिदान कर दिया; परन्तु कठिन पथ से विचलित नहीं हुए । ऐसी परोपकारी आत्मा इस नश्वर संसार मे ढूँढने पर भी मुश्किल से मिलती है ।

सहसा उनके मुख पर मुस्कान खिल गई । उसी मुद्रा में उन के मुख से निकला—तुम्हारे रूप में मुझे महर्षि कात्यायन मिल गये । वे भी तुम्हे छुडाने का अवश्य प्रयत्न करेंगे । तभी वे मेरे बन्दी बन सकेंगे । काला ब्राह्मण की सतर्कता के आगे चिडिया भी पख नही मार सकती है । तुम धन्य हो चन्दनदास । तभी उनकी आवाज तीखी पड़ी—।

"कोई है ?"

आवाज को सुनते ही प्रतिहारी ने प्रवेश किया ।

उसे आदेश मिला ।

'मेरे सहयोगी अमात्य को भेजो ।"

आदेश का पालन हुआ ।

"अमात्य ने गुरुदेव के समक्ष पहुँच कर अभिवादन किया ।"

बूढी आंखों ने देखा, जिह्वा ने अपना काम किया । और गुरुदेव की आवाज बाहर निकली ।

"मुझे एक सुन्दर अक्षरों मे पत्र लिखाना है । क्या तुम ऐसे व्यक्ति का नाम बता सकते हो जिस की लिखावट अति सुन्दर हो ।"

"हाँ आर्य ।"

"वह कौन है ?"

चाणक्य की बूढ़ी आंखों में उत्सुकता झलक उठी ।

"शकटदास ! इससे अच्छा लेखक पाटलि-पुत्र भर में नही है ।'

"फिर उन्हीं से मेरे आदेशानुसार निम्नलिखित पत्र लिखवा कर

मेरे पास मिजवादो ।

"जब तक दीर्घ कालीन पद पुनः प्राप्त न हो जाएगा, तब तक मन अशात ही रहेगा और साम्राज्य भी दृढ़तापूर्वक नही जम पाएगा वैसे तो इसके कितने ही कारण हो सकते हैं, परन्तु वास्तविकता को केवल प्रवीण नरेश ही पा सकते हैं । अति शीघ्रता के कारण प्रबन्ध नहो सकने से राज्य परिवर्तन असम्भव नही, विश्वास के हेतु अपने नाम की मुद्रा इसी के साथ भैजी जाती है । सावधान ! ध्यान रखिए ! चातुर्य जहॉ सौ दुःखों को निवारण कर सकती है वहाँ तुच्छ सी भूल सहस्रों को निमन्त्रित कर देती है ।"

अमात्य उस विषय को लेकर आदेश को पालने के लिए चले गए ।

उसके जाने के उपरांत गुरुदेव चाणक्य ने स्वयं ही कहा—

"मैं देखता हूँ अब कौन बच सकता है ? यही पत्र मेरी जीत का कारण होगा ?',

"कोई है ?"

प्रतिहारी ने प्रवेश किया ।

'महाबलाधिकृत को इधर भेज दो ।"

आदेश को सुन कर प्रतिहारी चला गया ।

उन्हे देखते ही चाणक्य ने कहा—

"इस भद्रासन पर विराजिए ।"

चाणक्य के सकेतानुसार महाबलाधिकृत उस आसन पर बैठ गए और पूछा—

"क्या आज्ञा है आर्य ?"

"आजकल युद्ध की क्या गति है आर्य ?"

"देव ! महर्षि कात्यायन ने उग्रता स्वरूप दो ओर से हमारे साम्राज्य पर आक्रमण किया है । दोनो ओर घमासान युद्ध हो रहा है । सहस्रो योद्धाओं से पृथ्वी खाली हो रही है । इस पर भी यह युद्ध दाव पेचों का खेल बना हुआ है ।"

"इसी कारण एक विशेष मंत्रणा के हेतु आपको यहाँ पर बुलाया है ।"

"इस युद्ध को जितनी देर तक खींच सको, उतनी देर तक खींचते रहो ।"

"इससे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ?"

"जन विनाश के द्वारा ही हमारे साम्राज्य की नींव पक्की हो सकती है आर्य । वैसे मै ऐसी युक्ति सोच रहा हूँ जिससे बिना लड़े ही सारे काम सिद्ध हो जायें ।"

"आपका आशय नही समझा देव ।"

"मेरा आशय इस युद्ध मे किसी प्रकार भी महर्षि कात्यायन को क्षति पहुँचाना नही है । वह विद्वत्ता की प्रतिमा है और प्रचंड युद्ध कर्ता । इसलिए उसकी मृत्यु मेरे और सम्राट् के लिए दुःख-कर होगी । यदि हो सके तो इन सब पदाधिकारियों को बन्दी बनाने का प्रयत्न करो ।"

"शत्रु पर इतनी दया का कारण नही समझ मे आया देव ।"

"उनको शत्रु समझना ही तो तुम्हारी भूल है महाबलाधिकृत ।"

चाणक्य ने कहा—

"फिर वे क्या है ?"

"आत्म विस्मृत भाई है । युद्ध तो विदेशियों से करना चाहिए' अपने ही भाईयों से नहीं । मैं उनको समझाकर ठीक मार्ग पर ले आऊंगा आर्य ।"

"यह विचार तो बड़ा ही उच्च है देव ।"

"इसीलिए मैं सबलनन्द को अज्ञात रूप मे अपने यहाँ देखना चाहता हूँ । इस आदेश का पालन गोपनीय ढंग पर योग्यता के साथ होना चाहिए ।"

"जो आज्ञा—"

कह कर महाबलाधिकृत चले गये । उसी क्षण प्रतिहारी ने सहयोगी

"आपका कथन सत्य है देव । मैंने तो केवल वह आज्ञा पालन रूप में ही किया है ।"

"यह आज्ञा पालन नहीं; बल्कि विद्रोह के लिए जीता जागता निमंत्रण है ।"

"मैंने विद्रोहात्मक कोई कार्य नही किया देव ? यदि महर्षि के परिवार को बन्दी बनाने की आज्ञा होती तो मैं अवश्य उन्हें बन्दी बना कर आपकी सेवा मे उपस्थित करता, फिर वे इस नगर में खुल कर रहते थे ।"

"फिर छिप कर जाने का मार्ग क्यों अपनाया गया ?"

"भय के कारण ।"

"कैसा भय ?"

"राजकीय अवरोध का भय देव ।"

"तब तो यह कार्य राज्य के प्रतिकल हुआ ।"

"हाँ देव ।"

तुरन्त ही शकटदास के मुख से निकल गया ।

तभी चाणक्य ने उच्च स्वर में पुकारा—"कोई है ?"

प्रतिहारी ने प्रवेश करके अभिवादन किया ।

उसे आदेश मिला—

"दण्डपायशाधिकरण से कहो कि शकटदास जी को तब तक कारागार में रखे जब तक कोई और विशेष आज्ञा न मिले ।"

फिर शकटदास की ओर मुख करके कहा—

"आप भी इनके साथ यहाँ से प्रस्थान करें ।"

"जो आज्ञा—" कह कर शकटदास प्रतिहारी के साथ चले गए ।

चाणक्य अपनी धुन में लीन हो गए ।

राजनैतिक समस्याओं ने उन्हें पुनः आकर घेर लिया ।

४०
★★★

'महर्षि जी ! आपका परिवार तो यहाँ सकुशल आगया परन्तु.

"परन्तु क्या महाराज ?"

"आपके परिवार का आश्रयदाता इस समय संकट में है ।"

"कौन ? चन्दनदास—"

महर्षि कात्यायन ने पूछा—

"परन्तु आपको यह सूचना कहाँ से मिली ?"

"विश्वस्त गुप्तचर के द्वारा ।"

"ठीक है । यह सब कुछ कालाब्राह्मण के कारण ही हुआ है । उसी ने मेरी अगुली की मुद्रा अपने गुप्तचर के द्वारा मगवा ली थी । इस बात का विश्वास मुझे आज हो रहा है महाराज कि वह कितने घृणित कार्यों के करने के लिए आतुर हो उठा है ?"

महर्षि कात्यायन ने क्रोधावेश में कहा ।

"अब चिन्ता की आवश्यकता नहीं है महर्षि जी । अब हमें उस की नीति को कुचलना होगा ।"

इतने में ही प्रतिहारी ने आकर कहा- —

"देव ! शकटदास जी बाहर उपस्थित हैं ।"

"पर उन्हें तो मृत्यु दंड मिल चुका था । वे कदापि नहीं हो सकते प्रहरी । तुम्हारे नेत्रों ने उन्हें पहचानने में भूल की है ।"

"नहीं देव ! वह बाहर उपस्थित है ।"

"यदि ऐसा ही है तो उन्हें सम्मान पूर्वक यहाँ पर ले आओ ।"

प्रहरी आज्ञा पाकर शकटदास जी को उन के पास ले आया । शकटदास जी को देख कर महर्षि का हृदय प्रफुल्लित हो उठा । उन्हों-ने उन्हें गले से लगाते हुए कहा–

"मित्र ! तुम्हे सकुशल पाकर मै अपार हर्ष पा रहा हूँ । मुझे तो अभी तक ऐसा विश्वास था कि अब कभी आपके दर्शन न हो सकेंगे पर ईश्वर ने अच्छा ही किया । अब मेरे पास बैठ कर बताओ कि काला ब्राह्मण के विकराल करों से तुम्हारे प्राणों की रक्षा कैसे हुई ।"

"यह सब कुछ एक विडम्बना है देव !"

"विडम्बना ।"

"हां मित्र ! सिद्धगुप्त जी मुझे शूली पर से छुड़ा कर यहाँ पर पहुँचा गये है ।"

"सिद्धगुप्त ने ऐसा क्यो किया ?"

"यह तो मैं भी नही समझ सका देव ।"

"अच्छा तो आप यहाँ पर किस मार्ग से पहुँचे ?"

"साधारण मार्ग से ।"

"शत्रु ने तुम्हें रोका नही ।"

"नहीं देव ।"

"तब तो इसमें भी कालाब्राह्मण की कोई चाल है ? वह सिद्धगुप्त के द्वारा हमारी गुप्त बातो को जानना चाहता है ।

तभी उन्होंने पुकारा—

"कोई है ?"

प्रहरी ने तुरन्त ही प्रवेश करके कहा–

"आज्ञा दीजिए देव ।"

"सिद्धगुप्त को सम्मान पूर्वक भेज दो ।"

वैसा ही हुआ ।

सिद्धगुप्त जी ने उनके समीप पहुँच कर यथा योग्य अभिवादन करते हुए कहा–

"यह मेरा अहोभाग्य है कि मै शकटदास जी को सकुशल यहाँ पर पहुंचा सका हूँ ।"

"इसके लिए आपका धन्यवाद है । पर अब आप को यहाँ पर रहने की कब तक इच्छा है ?"

"महाराज ! पाटलिपुत्र में तो अब मेरे लिए कोई स्थान नही है । अत: प्रार्थना है कि शेष दिन मै आपकी सेवा मे ही अर्पित करुं ।

"आपके अन्य साथी कहाँ पर है ?"

"पाटलि-पुत्र में देव ।"

"उन्हे कोई खतरा नही है ।"

"नहीं देव ! उन्हे उस देश मे कोई नही पहचानता है ?"

"काला-ब्राह्मण का प्रबन्ध कच्चा धागा नही है सिद्धगुप्त वह हर प्रकार की खोज तत्काल ही कर सकता है । मुझे आपकी बातो में कुछ सन्देह है । इसलिए मैं आपको शत्रु का गुप्तचर मानकर बन्दी बनाता हूँ । शत्रु का निणय फिर सोचा जाएगा ।"

"उपकार का फल बन्दी जीवन है देव ।"

"आप जैसे व्यक्तियो के लिए यही उपयुक्त है सिद्धगुप्त ।"

महर्षि कात्यायन की बात को सुन कर सिद्धगुप्त और कुछ न कह सका । वह सिर झुकाए आसन पर बैठा रहा ।

तभी महर्षि कात्यायन ने प्रहरी को बुला कर कहा—

"दो दण्डपाशिकों को तत्काल ही इधर भेज दो ।"

प्रहरी द्वारा सूचना पाते ही दण्डपाशिकों ने प्रवेश किया ।

उन्हे देखते ही कात्यायन जी ने कहा—

"इन्हें कारागार मे डाल कर विशेष प्रबन्ध में रखो; ये शत्रु के गुप्तचर है ।"

सिद्धगुत को लेकर वे दोनों कारागार की ओर चले गए ।

उनके जाते ही विशालाक्ष जी ने कहा—

"काला ब्राह्मण ! आपकी मुद्रा का सम्भवतः यहाँ पर प्रयोग करे ।"

"आपने ठीक सोचा है महाराज ! वह ऐसा कर सकता है । शकटदास जी ! आपसे तो कोई पत्र नही लिखाया गया ?"

'बिना सिरनामे के एक पत्र लिखवाया गया हे देव ।"

"उसका विषय कुछ याद है ।"

क.त्यायन जी के कहने पर शकटदास जी ने पत्र का विषय उन्हे सुना दिया ।

उसे सुनते ही वे चौक उठे । उनके मुख से निकला—

"काला ब्राह्मण की कोई विशेष चाल खेली जा रही है महाराज ।"

"यही तो मै भी सोच रहा हूँ ।"

तभी प्रतिहारी ने प्रवेश करके कहा—

"देव आपकी मुद्रा के साथ ही एक पत्र पकड़ा गया है ।"

"पत्र ! आश्चर्य चकित होकर उन्होने पूछा ।

"हाँ देव !"

"पत्रवाहक को यही पर ले आओ ।"

पत्रवाहक ने प्रवेश करके उन्हें नमस्कार किया और आदेश पाने के लिए चुपचाप वहाँ पर खडा हो गया ।

"तुम्हारे पास यह पत्र और मुद्रा कहाँ से आए ।"

क्रोधावेश मे कात्यायन जी ने पूछा ।

"महाराज ! आपकी आज्ञा से ही तो मै इसे लेकर काला-ब्राह्मण के पास जा रहा था ।"

"महर्षि जी से कब तुम्हारी भेंट हुई थी ?"

महाराज विशालाक्ष जी ने पूछा ।

"नही ! इनके विश्वासपात्र सिद्धगुप्त ने इनके संदेश के साथ ही यह पत्र और मुद्रा मुझे दी थी ।"

"कब ?"

"थोड़ी देर पहले ।"

शकटदास ने पत्रवाहक को घूरते हुए कहा––

"देव ! इसने भी मेरे प्राण बचाने में सहायता दी थी ।"

"तब तो यह भी शत्रु का गुप्तचर है । इसे भी सिद्ध-गुप्त के समान ही दूसरे कारागार मे डाल दो ।"

आज्ञा का पालन हुआ ।

पत्र-वाहक के जाने के उपरान्त महर्षि कात्यायन ने कहा––

"काला-ब्राह्मण की यह चाल तो असफल हो गई है महाराज ! परन्तु वह हमें पकडने की युक्ति अवश्य करेगा । अत हमे उसकी चालो से सजग रहना चाहिए । इस बात से कुमार को भी सजग कर देना चाहिए ।"

"विचार आपका बिल्कुल ठीक है । मैं कुमार को समझाने का पूर्णतया प्रयत्न करुंगा ।"

इतना कह कर महाराज विशालाक्ष अन्त पुर की ओर चले गए । महर्षि कात्यायन भी शकटदास जी के लिए भोजनादि के प्रबन्ध में लग गए ।

४१
★★★

"बहिन हेलेन ! आपके समागम से मेरा मन मयूर नृत्य कर रहा है । इतना ही नही । मैं आपके साथ भारत के सभी तीर्थ स्थानो व उत्तम स्थलों के दर्शन कर सकी हूँ । उन से जो आनन्द मुझे प्राप्त हुआ है वैसा कभी नही हुआ था । काश ! आपके साथ कैलाश यात्रा भी कर आती–" दुर्धरा ने प्रेमावेश में कहा ।

"युद्ध न छिड़ा हुआ होता तो ख्वाहिश भी पूरी हो जाती दुर्धरा–" हेलेन ने दुर्धरा को आलिंगनबद्ध करते हुए कहा ।

"अरे यह क्या ? क्या मेरी कमी को पूरा किया जा रहा है ?" सम्राट् गुप्त ने प्रवेश करके कहा ।

"है तो ऐसा ही—" हेलेन ने मुस्करा कर उत्तर दिया ।

"महर्षि कात्यायन जी के युद्ध ने तो आपको हम दोनो से बिल्कुल ही दूर कर दिया है सम्राट् ।"

"तुम्हारी बात हेलेन बिल्कुल ठीक ही है । अब दो चार महीने में युद्ध समाप्त हो जाएगा । तब मै सदा तुम्हारी आंखो के सामने ही रहूँगा ।"

"आर्य ! सारा कार्य तो गुरुदेव के कंधो पर है फिर आप चिंतित क्यों रहते है ?" दुर्धरा ने कहा ।

"प्रिय ! तुम्हारे लिए ये विचार उचित नही ।"

"क्यों ?"

"इस लिए कि राजा को सदैव सजग रहना चाहिए । अचेतन होने पर राज्य डगमगाने लगता है ।"

"मैंने तो सदैव कार्य का भार गुरुदेव के कधो पर ही देखा है आर्य कुमार—"

हेलेन ने दुर्धरा की बात का समर्थन करते हुए कहा ।

"प्रिय ! वे मेरे से बिना पूछे कोई बड़ा कार्य नही करते है ?"

अभी चन्द्रगुप्त जी इतना ही कह पाये थे कि कंचुकी ने प्रवेश कर के कहा—

"गुरुदेव ! बाहर के कक्ष में आपकी राह देख रहे है महाराज ।"

"उन्हें सम्मान पूर्वक यही ले आओ ।"

गुरुदेव चाणक्य ने वहाँ पर पहुँच कर दोनों साम्राज्ञियो को आर्शीवाद दिया और उचित स्थान पर बैठ गये ।

उनके बैठने के उपरान्त चन्द्रगुप्त, दोनों साम्राज्ञिया और अन्य विश्वस्त यथा स्थानो पर बैठ गये ।

तभी चन्द्रगुप्त ने पूछा—

"देव ! आपकी शकटदास वाली युक्ति तो असफल रही ।"

"होने दो वृषल ! काला ब्राह्मण के दाव से कात्यायन अपने को हीं बचा सकेंगे ।"

"युद्ध तो कुछ ढीला चलता हुआ नजर आ रहा है ।"

हेलेन ने पूछा ।

"बेटी ! तुम्हारा कथन सत्य है । इसका भी एक कारण है ।"

"वह क्या देव ?"

"मे नही चाहता कि भारतीय तलवारे उनके ही भाईयो के गले पर चलें ।"

"फिर किन पर चलाना चाहते हो देव ।"

"विदेशी शत्रु पर ।"

'गुरुदेव ! क्या आप मेरे ही सजातियों के लिए शक्ति को इकठ्ठा कर रहे हैं ।"

हेलेन ने पूछा—

"बेटी ! मै किसी से विग्रह न चाह कर भारतीय रक्षा ही चाहता हूँ ?"

"आपके बिचार अति सुन्दर है गुरुदेव । आप मेरी इन बातो पर ध्यान न दीजिएगा ।"

तभी चन्द्रगुप्न ने कहा—

"आर्य ! अब आप राज-काज के विषय मे कुछ बताने की कृपा करै ।"

"वृषल ! कुमार सबलनन्द इस युद्ध मे पराजित होकर हमारे बन्दी बने है । मैं अब विशालाक्ष और महर्षि कात्यायन जी से निश्चित स्थानों मे मिलने के लिए जा रहा हूँ ।"

"यहाँ का प्रबन्ध गुरुदेव ।"

"वह सब ठीक कर दिया गया है ।"

"अब तो विजय हमारे हाथ ही है गुरुदेव ।"

"उसी की पूर्ति हेतु उनसे भेंट करना चाहता हूँ वृषल ।"

"महर्षि कात्यायन जी के ससक्ष क्या प्रस्ताव रखेंगें ?"

"महामन्त्री पद का ।"

"गुरुदेव ! मै आपको किसी के आधीन नही देख सकता हूँ ?"

वृषल ! उन जैसे योगी और नीतिज्ञ के आधीन रहना मैं अपना सौभाग्य समभुँगा ।"

इतना कह कर चाणक्य चलने के लिए तैयार हो गए । सबने सम्मान पूर्वक उन्हें प्रस्थान कराया ।

इसके उपरान्त सब लोग अपने-अपने स्थानों को चले गए और चन्द्रगुप्त भी दोनों साम्राज्ञियों के साथ प्रेमालाप में लीन होगए ।

४२

★★★

युद्धस्थल से दो कोस दूर शिविर में लौहित्यनरेश व्यग्रता के साथ चक्कर लगा रहे थे और उनके अंग-रक्षक शिविर के बाहर पहरा देरहे थे ।

ऐसे ही समय मे चाणक्य ने अपने सेनापति के साथ वहाँ पर प्रतिहारी से आने की सूचना अन्दर भेजने के लिए कहा ।

प्रतिहारी ने गुरुदेव के आगमन की सूचना महाराज को दे दी और आदेश मिलने पर उन दोनो को सम्मान पूर्वक शिविर में पहुँचा दिया ।

महाराज ने उन दोनों को यथा स्थान बैठा कर पूछा—

"कहिए आर्य ! कैसे कष्ट किया ?"

"महाराज यह युद्ध आपस मे न होकर यवनों के प्रति होता तो अच्छा था ।"

"होना तो ऐसा ही चाहिए था आर्य; परन्तु आपके उठाए हुए गलत कदम ने मुझे ऐसा करने के लिए विवश कर दिया ।"

"गलत कदम !"

चाणक्य ने आश्चर्य के साथ दोहराया ।

"हाँ ! आपने अस्सी वर्ष से स्थापित साम्राज्य का अन्त कर दिया ।

अतः इस युद्ध का दोष आप पर ही है मेरे पर नही ।"

"महाराज ! चन्द्रगुप्त ने अपने राज्य के छिन जाने पर और

स्वयं रक्षा के लिए शास्त्रों को उठाया था ।

यदि साम्राज्य की ओर से ऐसा अनुचित कदम न उठाया जाता तो ऐसा कदापि न होता ।"

चाणक्य ने कहा—

"यदि चन्द्रगुप्त धननन्द की रुपवती कन्या के प्रणय को न ठुकराते तो वह कभी भी ऐसा कदम उठाने के लिए तैयार न थे । उसकी ओर से क्रोध को जन्म दिया गया जिसके कारण यह सब कुछ हुआ आर्य ।"

"ऐसा समझना ही तो भूल है महाराज ।"

"वह कैसे ?"

"चन्द्रगुप्त ने राजकुमारी सुनन्दा के प्रणय को कभी भी नही ठुकराया । संकोचवश उस समय वे उसके प्रणय को न समझ सके ।

इसके बाद उन्होंने कितनी ही बार सुनन्दा से विवाह के लिए कहा, परन्तु राजकुमारी ने उनके इस प्रस्ताव को बिल्कल ही ठुकरा दिया ।

मेरे समझाने पर भी जब बेटी राजकुमारी ने अपने हट को नहीं छोड़ा फिर इसमें चन्द्रगुप्त का क्या दोष ?"

"यदि ऐसा हुआ है तो इसमें मेरा ही दोष है ।"

"मेरे शब्दों की पुष्टि आर्य सुनन्दा देवी से कर सकते हैं महाराज ।"

"इसकी आवश्यकता नहीं है आर्य ; लेकिन आपने कुमार को बन्दी बना कर अच्छा नही किया ।"

"यह ठीक ही हुआ है महाराज ।"

कुमार राजद्रोह के दण्ड के भागी है । इसलिए उन्हे दण्ड देने के लिए ही कारागार में डाला गया है ।"

"ऐसा मजबूर न कीजिए आर्य ! इसमे उसका कोई अपराध नहीं उस बेचारे ने तो हमारे कहने मात्र से ही यद्ध किया था ।"

"यदि आपसे सन्धि न हो सकी तो कुमार के जीवन का निर्णय

दंड-नायक के द्वारा होगा । हां इतना याद रखिए कि राजद्रोह का दंड मृत्य है ।"

चाणक्य की बातों को सुन कर विशालाक्ष जी सोच में पड़ गए।

उनको शान्त देख कह चाणक्य ने पुनः कहा--

"महाराज ! आपकी पौत्री कमलाक्षी के विवाह हो जाने के कारण ही मै इस सन्धि के लिए आया हूँ ; क्योंकि मैं नही चाहता कि उस बेचारी को इतनी अल्पायु में वैधव्य-जीवन बिताने के लिए बाध्य करूँ । इसलिए मेरे प्रस्ताव पर विचार कर लीजिए और आर्य कात्यायन जी से भी परामर्श करले ।"

"महाराज ! मै चाहता हूँ कि दोनो कुल फले फूलें । अब पौत्री का सुख और राजवन्श बचाना आपके हाथ मे है मेरे नहीं—"

इतना कह कर चाणक्य ने लौहित्य-नरेश के चेहरे के भावों को पढ़ने की चेष्टा की ।"

कछ देर शान्त रहने के उपरान्त महाराज ने कहा—

"आर्य ! इन भयावह बातों की सुन कर ती मेरा कलेजा ऊपर को आ रहा है । समझ मे नही आता कि मै आपको क्या जवाब दूँ ?"

आप स्वय ही बताएँ कि मुझे क्या करना चाहिए ?"

"यदि आप लौहित्य मात्र पर सन्तुष्ट रहे और भद्रशाल व आर्य कात्यायन अपने पदो को पुनः सम्भालले तो मैं आपकी ओर से सम्राट् चन्द्रगुप्त से क्षमादान के लिए प्रार्थना कर सकता हूँ । आशा है कि फिर आप लोग उनके क्रोध का भाजन नहीं बनेंगे ।"

लौहित्य-नरेश चुपचाप सुनते रहे और चाणक्य कहते गए; आप पाटलिपुत्र की धरोहर को हमारे पास भेजदें । तब हम कुमार सबलनंद जी को सम्मानपूर्वक आपके पास पहुँचादेंगे । इसके अतिरिक्त आपके पास केवल पच्चीस सहस्र सेना रह सकेगी । शेषों को हमारी सेना में स्थान मिल जाएगा ।"

"आपके कथन से तो यह बात सिद्ध होती है कि हम अपनी पराजय को अभी से स्वीकार करलें ।"

"इसके अतिरिक्त और कोई चारा नही है महाराज ?"

"क्यों ?"

"इस लिए कि नवनन्द वश के साम्राज्य को सम्भालने के लिए आपके पास कोई उत्तराधिकारी ही नहीं है । इस पर आप किसी गैर को ढूढेंगे तो उससे अच्छा है कि चन्द्रगुप्त को ही उत्तराधिकारी समझ लीजिएगा ।"

"आर्य ! आपकी प्रवीणता के आग मै कुछ नही कह सकता हूँ । यदि आप उचित समझे तो मै आर्य कात्यायन जी से परामर्श करके उचित उत्तर दू ।"

"अवश्य ! आप उनसे परामर्श करलें, फिर मै भी उनसे भेंट करुंगा ।"

चाणक्य इतना कह कर अपने गन्तव्य स्थान की ओर लौट आये ।

उनके जाने के उपरान्त महाराज ने महर्षि कात्यायन और भद्रशाल जी को विचार विनिमय के लिए बुलाया ।

उनके आने पर महाराज ने चाणक्य की सारी बाते उनके समक्ष रखदी और अपना विचार प्रकट कर दिया ।

इसको सुन कर महर्षि कात्यायन जी ने आर्य चाणक्य से मुलाकात करना ही श्रेयकर समझा ।

उसी क्षण दूत को भेज कर आर्य चाणक्य को उसी शिविर में बुलवा लिया गया ।

सब के बैठ जाने पर महर्षि कात्यायन जी ने कहा—

"आपके दर्शन करके यह जीवन कृतार्थ हुआ आर्य ।"

"मै आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ ।"

चाणक्य ने महर्षि के चरणों का स्पर्श करते हुए कहा ।

"आयुष्मान भव !"

महर्षि कात्यायन जी के मुख से निकला ।

"सम्राट् चन्द्रगुप्त आपके आर्शीवाद की चाहना रखते हैं–"

चाणक्य ने कहा ।

"शत्रू से आर्शीवाद की चाहना । यह सब कुछ मेरी समझ में नहीं आता चाणक्य ।"

"आत्मीय शत्रुता नहीं है देव । इसी हेतु आर्शीदाद के एिल निवेदन किया है ।"

"मैं सम्राट् को चित्त से आर्शीवाद प्रदान करता हूँ आर्य । अब आप अपना प्रयोजन कहे, जिसके लिए आपने यहाँ आने का कष्ट उठाया है ।"

"मेरा प्रयोजन तो केवल पारस्परिक कलह को मिटाना है आर्य । यदि ऐसा न होकर युद्ध चलता ही रहा तो कई कुल विनिष्ट हो जायेंगे ओर लाखों भारतीय मृत्यु की गोद मे सो जायेंगे ?"

"यदि आपका यह प्रयोजन मान भी लिया जाये तो आप मेरे और भद्रशाल जी के मौर्याधीत होने के लिए क्यों विवश कर रहे है ?"

"इसलिए कि मौर्य कुमार की सभा सदैव योग्य पुरुषों से भरी रहे । ऐसा होने पर कोई भी विदेशी राज्य हम भारतीयों की ओर आंख न उठा सकेगा ।"

"आपके होते हुए भारत के लिए ऐसा दिन कभी भी नहीं आयेगा ।"

महर्षि कात्यायन जी ने कहा ।

"मेरी अयोयग्ता को इतना महत्व न दें आर्य ।"

"इस में मतभेद हो सकता है ।"

"उसे संधि की धारा समझ कर दूर कर दीजिएगा देव !"

"यदि इस मे मेरी अस्वीकृति हो तो ।

"मुझे आपसे ऐसी आशा नही है ।"

"विवश मत करो चाणक्य ।"

"विवश कौन कर रहा है देव ? मैं लो चरण स्पर्श करके याचना माँग रहा हूँ । इस पर मै इतना जानता हूँ कि आपके शस्त्र धारण किए बिना चन्दनदास और कुमार का मोचन न हो सकेगा ।"

"अच्छा तो आप हमसे क्या कार्य लेना चाहते है ?"

"भद्रशाल जी महासेनापति और आप महामंत्री का पद सुशोभित करें ।"

चाणक्य ने खुशी के साथ कहा ।

महर्षि कात्यायन जी ने चाणक्य की बातो को सुन कर लौहित्य नरेश और भद्रशाल की ओर देखा । उनके भावो को समझ कर कहा—

"आर्य ! भद्रशाल जी अपने पद को स्वीकार कर लेगे ; परन्तु मेरे लिए अब कोई मन्त्रिपद देने की कृपा करे । मैं यहाँ मन्त्रिपद को अब स्वीकार करना नही चाहता ।"

"यह कैसे हो सकता है देव की आप जैसे महापुरुष मेरे आधीन रहे ?"

"आपका कथन औचित्य युक्त है आर्य, परन्तु मेरा पद ग्रहण करना पाप पूर्ण होगा भद्र ! भला ऐसा क्यों करना चाहूँगा ?"

"आप इसको पाप कहते है तो इतना ही किया करें कि सम्राट को उचित सम्मति उनके कार्यो में देते रहा करें ।"

"आपकी प्रवीणता के आगे मुझे यह निर्णय स्वीकार है आर्य–"

महर्षि कात्यायन जी ने हंसते हुए उत्तर दिया ।

इसके उपरान्त संधिपत्र सभी शर्तो के अनुसार तैयार हो गया । दोनो पक्षो की ओर से वह स्वीकृत हुआ । इसके उपरान्त सबलनन्द और चन्दनदास जी को मुक्त कर दिया गया । सम्राट्र चन्द्रगुप्त ने महर्षि कात्यायन और भद्रशाल जी को सम्मान पूर्वक पद दिए और आर्य चाणक्य महामंत्रि पद पर ही रहे ।

४३

★★★

सम्राट् चन्द्रगुप्त के स्नेह के आगे सभी शत्रुओ ने अपने सिर झुका दिए । एक बार पुनः भारत संगठित राज्य मे सुशोभित हो गया । सुख और चैन की वंशी बजने लगी । कुकृत्यं और बर्बरता की भावनाएँ लोगों के मन से जाती रही ।

आर्य चाणक्य और भद्रशाल जी ने सारे राज्य का दौरा करके साम्राज्य की नीव को पक्का कर दिया और उसकी सीमा निर्धारित कर दी गई । हर स्थान पर समाचारप्रेरकों को नियत किया गया । उपद्रवों को शान्त कर दिया गया । असत्यता और चोरी का पूर्णतया परित्याग कर दिया गया ।

सैन्य विभाग को द्रढ रखने के लिए उसमे ६ सहस्त हस्ती, तीन सहस्त्रघुड़सवार, ६ लक्ष पैदल सैनिकों की व्यवस्था की ।

इसके अतिरिक्त राजपथ, पशुपथ, रथपथ आदि बड़े सुन्दर बनवाये व्यापार की ओर विशेष ध्यान दिया गया । दासता की भावना को कुचल डाला गया ।

इस प्रकार मौर्यं साम्राज्य सुचारु रूप से चलने लगा ।

३१८ बी. सी. में सेल्यूकस शाह की उपाधि से सुशोभित हुए । उन्होंने इसकी खुशी मे एक जशन मनाया । उसमें उनकी पुत्री हेलेन अपने दो पुत्रों के साथ वहाँ पर पहुँची । पिता ने बड़े स्नेह से पुत्री का स्वागत किया और समयअनुसार आक्रमण सम्बन्धी अनेक प्रकार की बातें करीं ।

कुछ दिन रहने के उपरान्त साम्राज्ञी हेलेन अपने पुत्रों सहित भारत लौट आईं ।

उनके आने के कुछ दिनों पश्चात् यवन सम्राट् सेल्यूकस अपनी विशाल सेना के साथ खैबरघाटी पार करके भारत पहुँचा । वह व्यास नदी और यमुना को पार करता हुआ गंगा तट पर पहुँच गया ।

वहीं पर सम्राट् चन्द्रगुप्त की विशाल सेना ने उसको परास्त किया । इस पर सेल्यूकस पराजित अवस्था मे सम्राट् चन्द्रगुप्त से प्रेम पूर्वक मिल कर अपने देश को लौट गया ।

उसके बाद सम्राट् का राज्य सुख और शान्ति के साथ चलता रहा; फिर किसी यवन राजा ने इस ओर आने का साहस नही किया ?

कुछ वर्षों के उपरान्त सम्राट् चन्द्रगुप्त की आन्तरिक शान्ति नष्ट हो गई । दोनों साम्राज्ञी स्वर्गलोक की यात्रा कर गईं । उनके वियोग से पीढित हो गए वे ! महर्षि कात्यायन जी सम्राट् से आज्ञा पाकर बन-गमनहो गए ।

इस प्रकार भाग्यहीन सम्राट् चन्द्रगुप्त का मन उनन्चास वर्ष की अवस्था में ही इस सन्सार से विरक्त हो गया ।

उन्होंने राजकुमारी सुनन्दा से पुनः विवाह के लिए प्रार्थना की; परंतु उन्होंने समझाते हुए उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया ।

इस प्रकार निराश होकर चन्द्रगुप्त ने विरक्ति भावों का आलि-किया और पौत्र, पुत्र तथा पुत्रवधुओ को आर्शीवाद देकर बनगमन की तैयारी करने लगे ।

आर्य चाणक्य ने उन्हें बहुत रोकना चाहा परतु वे न माने । उन्होंने अपने पुत्रो को राजनीति का उपदेश देकर आर्य चाणक्य के कथन को पालन करने के लिए कहा ।

इसके उपरान्त वे आर्य चाणक्य के पास बिदा और आर्शीवाद के लिए पहुँचे ।

उनकी इस अवस्था को देख कर आर्य चाणक्य को बड़ा दुःख

उन्होंने अश्रु पोंछते हुए कहा—

"बेटा वृषल ! तेरी आयु अभी इस योग्य नहीं हुई है ।"

"गुरुदेव ! मुझे इन सांसारिक झंझटों में न डालें । मेरे स्थान पर आप अपने पौत्र बिन्दुसार को ही सम्मति प्रदान करने का वचन दें ।"

आर्य चाणक्य ने वृषल और योगिनी सुनन्दा को आर्शीवाद दिया और महर्षि कात्यायन वाले ही वन मे उन दोनों के रहने का प्रबन्ध कर दिया ।

वे दोनों प्रजा और परिजनों से मिल कर बन में चले गए । सब के सजल नेत्रो ने अपने प्रिय सम्राट्र को बिदाई दी । वहाँ पर पहुँच कर ये दोनों महर्षि जी के साथ धार्मिक जीवन बिताते हुए दीर्धजीवी हुए ।

उधर आर्य चाणक्य ने वृपल के रूप में बिन्दुसार को देखा ।

आर्य चाणक्य की नीति पाटलि-पुत्र पर उसी प्रकार आच्छादित रही जिस प्रकार से पहले रहा करती थी ।

सम्राट्र बिन्दुसार ने देव चाणक्य का कभी भी उलघॅन न किया ।

वे सदैव उनके कथानुसार चलते रहे ।

इस प्रकार काला ब्राह्मण का कृपालू हाथ मौर्य वंश की शत्रुओं से सदैव रक्षा करता रहा और मौर्य वश उनकी सेवा मे सदैव तत्पर रहा ।

॥ समाप्तम् ॥

लेखक की अन्य रचनाएँ

उपन्यास—:

पंखहीन

जूही की कली

अनीता

हरामजादी (प्रेस में)

तिलसकरी (प्रेस मे)

कहानी—:

गाँव और शहर

उसने कहा था

आलोचना

कवि और उनकी कला (प्रेस में)

प्राचीन कलाकार (प्रेस में)

निबन्ध—:

विचार ओर समस्याएँ

साहित्य सुमन

निबन्ध कौमुदी

बाल व प्रौण साहित्य—:

सोने की खेती

धरती का लाल

बचो और बचाओ

जापानी ढंग पर खेती

सा[ँ]च के आँच

[मे]घदूत

र[घु]वंश

अभि[ज्ञान] शाकुन्तल